करुणानिधि श्रीराम

सरोज श्रीवास्तव 'नलिन'

करुणानिधि श्रीराम

सरोज श्रीवास्तव 'नलिन'

करुणानिधिश्रीराम

सरोज श्रीवास्तव 'नलिन'

प्रकाशक :: नलिन प्रकाशन, लखनऊ ।

सर्वाधिकार सुरक्षित :: प्रकाशक

आवरण सज्जा :: कु. अमिता श्रीवास्तव

प्रथम संस्करण :: जनवरी, 1993

न्यौछावर :: पैतालिस रूपए

मुद्रक

सूरज प्रिन्टिग प्रेस
गौतमबुद्ध मार्ग
लखनऊ

-:-

समर्पण

गुरु चरणों में काव्य सुमन का
अति श्रद्धा सहित समर्पण है
यह 'करुणानिधि श्रीराम' कथा
गुरु राम दास को अर्पण है ।

सरोज श्रीवास्तव **'नलिन'**

आशीर्वचन

मंगलमय हरि मूर्ति है,
मंगलमय हरि नाम ।
मंगलमय कविता रहे,
पढ़े सुने अभिराम ।।

दिनांक : 10-2-1988 ईसवी

गुरू राम दास जी (करह)

भूमिका

प्रस्तुत कृति में लेखिका - सरोज श्रीवास्तव 'नलिन' ने भगवान राम के अनेक रूपों को रूपायित किया है । विचारमग्न होने पर जब जो रुप चिन्तन पटल पर उतरा है उसका अंकन ठीक वैसे ही, जैसे विचारों की सारिणी पर आया, चित्रित किया गया है । भाषा प्राञ्जल, प्रसादमयी है । अभिधा में कतिपय स्थलों पर अलौकिक चमत्कृति उत्पन्न हुयी है ।

प्रसंग में पूर्वापर जिस अभिव्यक्ति का आश्रय लिया है उसमें रस का पूर्ण परिपाक हुआ है । श्री राम के विविध चित्रों का अंकन जन साधारण से लेकर विद्वज्जनों के हृदय के आकषर्ण का माध्यम बनता है । सारल्यपूर्ण अभिव्यक्ति में सात्विकता का विशेष समावेश है ।

आज के इस युग में जहाँ अगीत, अकविता, अतुकान्त शैली में लोगों को कविता विडम्बना मात्र ही प्रतीत होती है, वहाँ इस कृति में ऋजुता एवम् शाश्वत् प्रेषणीयता के दर्शन होंगे । मेरी कामना है कि सहृदय जनों के हृदयों में इससे राम के रूप की रम्य स्थापना होगी । श्रद्धा एवम् विश्वास का प्रादुर्भाव होगा । निम्न पक्तियाँ अपनी सार्थकता को स्वयं प्रकट करती हैं -

'श्याम घटा में दामिन दमकी
चमक उठा हृदयाम्बर ऐसे ।
नील सरोरुह श्याम राम जी
पहने हों पीताम्बर जैसे ।।'

जीवन के अनेक संघर्षों में रह कर भी भारतीय नारी का
य अपनी श्रद्धा एवम् विश्वास को नहीं टूटने देता है । निम्न
क्तियों में यह भावना पूर्णरुप से परिपुष्ट हुयी है -

दृश्य अकल्पित देख द्वार पर
संज्ञाहीन हो गयीं सीता ।
लौट चेतना आयी पल में
बही शब्द - सुरसरी पुनीता ।।

'अरे अरे लव, कुश धनु छोड़ो
वत्स! पिता हैं यही तुम्हारे ।
यही राम राजा रघुवर हैं
ये ही जीवन प्राण हमारे ।।'

मैं ऐसी उत्तम कृति के लिये लेखिका को साधुवाद देता
हूँ ।

दिनांक: 19-3-1983

आचार्य सेवकेन्द्र त्रिपाठी

❀ श्री रामः शरणं मम ❀

जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय शूल।
सो कृपाल मोहि तो पर सदा रहहु अनुकूल॥

रामकिंकर उपाध्याय

फोन :- २४३०६३

तुलसी तत्त्वानुसन्धान केन्द्र
४/२७३, रानीघाट
(पुराना) कानपुर-२०८००२

20.4.1993

श्री रामः शरणं मम

"करुणा निधि श्री राम" के नाम से कवयित्री ने जो रचना की है, उसका पूरी तरह रसास्वादन करने का सुअवसर तो नहीं मिला। किन्तु यत्र तत्र से कुछ प्रसङ्गों का पठन श्रवण के माध्यम से दर्शन मात्र कर पाया। श्री राम को अनगिनत रूपों में देखा गया है। कवयित्री ने उनके करुणा पक्ष को मुख्यता देते हुए जो रचना की है वह अपने उद्देश्य में पूरी तरह सफल रही है। कवि की नैसर्गिक काव्य प्रतिभा और भावना से कोई भी सहृदय व्यक्ति अभिभूत हुए बिना नहीं रह सकता।

अमृतलाल नागर
Amritlal Nagar

दूरभाष : ८२३५० Phone : 82350
चौक, लखनऊ–२२६००३
Chowk, Lucknow-226003

अखंड सौभाग्यवती नलिन

तुम्हारी पुस्तिका

'करुणानिधि श्रीराम' आद्यन्त पढ़ गया। एक प्रकार से इसे संक्षिप्त रामायण ही कहा जाना चाहिये। इसके भाव सुन्दर और श्रद्धा निश्छल है

शुभाकांक्षी

अमृतलाल नागर

१. १. ८१

डा० कुंवर चन्द्रप्रकाश सिंह
संस्थापक संरक्षक
अन्तर्राष्ट्रीय हिन्दी समिति

फोन : 78107
सावित्री नीलायम
२/२२, त्रिवेणी नगर
लखनऊ-२२६०२०

दिनाङ्क जनवरी.1993

अभिमत

'करुणानिधि श्रीराम' शीर्षक काव्य ग्रन्थ का अवलोकन कर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई । इसकी कवयित्री श्रीमती सरोज श्रीवास्तव 'नलिन' को भक्तरस की भावयित्री प्रतिभा का प्रसाद प्राप्त है । उन्होंने इस ग्रन्थ को चार खण्डों और दस सर्गों में लिखा है । राम नाम में उनकी अविचल निष्ठा है । भगवान राम अनन्त गुणों कें आकर हैं -

' राम अनन्त, अनन्त गुण, अमिट कथा विस्तार ।। '

भगवान राम के अनन्त गुणों में भक्तों के लिए तीन प्रमुख रुप से ध्येय, ज्ञेय और गेय माने गये हैं । वे तीन गुण हैं :- कृपा, दया और करुणा । सामान्य रूप से भले ही इन तीनों को पयार्य माना जाता रहा हो, पर वस्तुतः ये तीनों विशिष्ट अर्थ परम्परा से मण्डित हैं । ' कृपा ' भगवान की वह लोक कल्याण विधायिनी वृत्ति है, जिससे प्रेरित होकर बार-बार वे अपनी अपरिमेय शक्ति का अनुसंधान करते हैं और अनुसंधान करते हुए कहते हैं कि भक्तों के दुःख निवारण करने में मैं ही समर्थ हूँ । उनकी यह वृत्ति भगवान की कृपाशक्ति है । उनकी यह चिरचैतन्य कृपाशक्ति शत्रु-मित्र में अन्तर नहीं करती और किसी का अपराध नहीं देखती -

" रक्षणे सर्व भूतानामहमेव परो विभुः,
इति सामर्थ्य सन्धानं कृपा सापारमेश्वरी ।"

इसी प्रकार दया भगवान का वह विशेष गुण है, जो बिना किसी स्वार्थ के आर्त्तिजन की पीड़ा का निवारण कर, उसे सुख प्रदान करता है :-

"दया दयावतां ज्ञेया स्वार्थम् तत्र न कारणम्"

करुणा भगवान का वह गुण है जो भक्त के दुःख को देख कर उन्हें दुखी बना देता है और उसके निवारण के लिए प्रेरित करता है । आश्रित के आर्त्त की अग्नि में उनका हृदय रूपी स्वर्ण प्रवीभूत हो जाता है, उसकी रक्षा के लिए उन्हें प्रेरित करता है-

" आश्रितार्त्याग्निना हेम्नो रक्षितुर्हृदयद्रवः
अत्यन्तमृदु चित्तत्वमश्रुपातादिकृभ्दवेत ।।"

कवयित्री श्रीमती सरोज श्रीवास्तव 'नलिन' ने अपने काव्य ग्रन्थ में भगवान श्रीराम के करुणानिधि स्वरुप को विविध प्रसंगो के माध्यम से प्रस्तुत करने का सफल प्रयत्न किया है । उन्होंने भगवान् के उपर्युक्त तीनों गुणों को इन पंक्तियो में एक साथ लक्षित करवा दिया है -

करुणानिधि श्रीराम नित्य हीं,
धरती पर विचरण करते हैं ।
स्वयं पहुँच कर भक्तों के घर,
सब संताप हरण करते हैं ।।

" करुणानिधि श्रीराम" एक सरस और मनोहारी काव्य है । छन्द की योजना मन को रमा लेती है ।

इस युग में समसामयिक कवयित्रियाँ प्रायः अत्यन्त स्थूल लौकिक विषयों पर काव्य रचना करने में प्रवृत्त दिखायी पड़ती हैं । ऐसे काल खण्ड में श्रीमती नलिन की यह कृति " करुणानिधि श्रीराम " स्वागत के योग्य है । मैं हृदय से उसमें अभिव्यक्त कैतव विहीन रामप्रेम का अभिनन्दन करता हूँ ।

कुँवर चन्द्रप्रकाश सिंह
(डा0 कुंवर चन्द्र प्रकाश सिंह)
१५-१-९३

डा० दाऊजी गुप्त
महापौर, लखनऊ

नन्द निकेतन
नाका हिंडोला, लखनऊ-4
फोन : 247491, 235218

नगर महापालिका, लखनऊ
फोन : 247688, 240196 PBX

अगस्त 2,1992

श्रेष्ठ काव्य अमरता का उत्कृष्टतम मापदण्ड है। किन्तु जिस दिन हम मान लेंगे कि बाल्मीकि, व्यास, होमर, वर्जिल, कालिदास या तुलसीदास से बड़ा कवि कोई नहीं हो सकता, उसी दिन काव्य के प्राण और उसकी श्वास नलिकायें अवरूद्ध हो जायेंगी। एक ही विषयवस्तु एवं व्यक्तित्व पंर लिखे गये विभिन्न कवियों के काव्य शताब्दियों के अंतरालोपरान्त कालजयी हुए हैं।

बाल्मीकि कृत रामायण आदिकाव्य के रूप में प्रसिद्ध है, किन्तु बाल्मीकि से शताब्दियों पूर्व महर्षि च्यवन कृत रामायण का उल्लेख महाकवि अश्वघोष कृत "बुद्धचरित" में है। महाभारत में महर्षि व्यास ने अनेक स्थलों पर राम का उल्लेख किया है। उसमें सबसे विस्तृत रामकथा 704 श्लोकों में है। संस्कृत के अतिरिक्त इण्डोनेशियाई, थाई, कोरियाई, चीनी व काम्बोज भाषाओं में रचित प्राचीनतम रामायणों सहित उर्दू - फारसी एवम् भारतीय भूखण्ड की समस्त भाषाओं में एक हजार से अधिक रामायणें उपलब्ध हैं। बौद्ध और जैन वाङ्मय में भी राम पर अगाध साहित्य उपलब्ध है। भारत में राम, कृष्ण, बुद्ध के चरित्र महान कवियों के अजश्र प्रेरणा श्रोत रहे हैं।

प्रसिद्ध ग्रन्थ प्रसन्न राघव की भूमिका में कवि स्वयं से प्रश्न पूछता है **"कथं पुनरपि कवयः सर्वे रामचन्द्रमेव वर्णयन्ति"**। अर्थात क्यों समस्त कविगण पुनः पुनः रामचन्द्र के कथोपकथन का वर्णन करते हैं। इस जिज्ञासा मूलक प्रश्न का समुचित और सहज उत्तर शताब्दियों के उपरान्त हिन्दी के राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त देते हैं :

राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है

जब मन के तारों को कोई चरित्र, विषयवस्तु या व्यक्ति झंकृत कर देता है तो अंतर में बसी हुई संवेदनाओं की सरिता काव्य बनकर अपने आप फूट पड़ती है और सृजन क्रम या रचना प्रक्रिया में कृतिकार नायक के चरित्र-चित्रण के समय अपने मन-मानस से साक्षात्कार कर जब विषय को प्रस्तुत करता है, तब काव्य में उसकी मृदुल संवेदनाओं की अभिव्यक्ति स्वयमेव हो जाती है। सरोज श्रीवास्तव **"नलिन"** जी के काव्य में उनकी हृदयस्पर्शी संवेदनायें चमत्कारिक रूप से परिलक्षित होती हैं।

जिस अत्यन्त सहज किन्तु प्रभावशाली ढंग से कवयित्री ने संवेदनाओं का सजीव चित्रण राम के माध्यम से किया है, वह अपूर्व है -

माँ की सुधि में बेसुध होकर
राम विकल हो जाते होंगे ।
स्वयं हृदय को समझाने में
राम विफल हो जाते होंगे ।।

वेदना को भावुकता के स्तर पर ले जाकर माँ के प्रति निजी कर्तव्यबोध की भावना से जोड़ना अभिनव प्रयोग है -
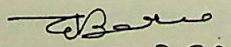
निशिगामी पशु-पक्षी का स्वर
सुन रघुवर उठ जाते होंगे ।
तब आकुल मन अंधकार में
माँ का ध्यान लगाते होंगे ।।

नारी मर्मांतक पीड़ा को पीकर उससे अपने प्रेमास्पद को मुक्त रखती है और उन भावुक क्षणों में भी उसकी प्रत्युत्पन्न मति बरकरार रहती है – इसका अद्‌भुत चित्रण है -

अन्तरमन की अमित वेदना
उमड़ नयन तक आती होगी ।
विवश उदासी बनी विकलता
आनन पर छा जाती होगी ।।

हुआ नाथ क्या जब जिज्ञासा
सीता ने सहसा की होगी ।
पड़ी किरकिरी कह कर पीड़ा
पलकों से बरसा दी होगी ।।

काव्य **"करूणानिधि श्रीराम"** के छन्द काव्य, भाषा सौष्ठव एवम् भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से अपूर्व हैं । मैं कवयित्री श्रीमती सरोज श्रीवास्तव "नलिन", श्री उमेश चन्द्र, भूतपूर्व महाधिवक्ता, उत्तर प्रदेश तथा श्री राजेन्द्र श्रीवास्तव जी का अत्यन्त आभारी हूँ जिनकी अनुकम्पा से मुझे यह काव्य-ग्रन्थ अवलोकनार्थ उपलब्ध हुआ ।

2.8.92
डा० दाऊ जी गुप्त

भक्तों से निवेदन

भारतीय छन्द ग्रन्थ - 'करुणानिधि श्री राम' की रचनायें पढ़ कर मन को बहुत आनन्द प्राप्त हुआ । यह ग्रन्थ सौभाग्वती सरोज श्रीवास्तव 'नलिन' की लेखनी के द्वारा प्रस्तुत हुआ है । यह ग्रन्थ अनोखा एक सागर है एवं सद्भक्ति धारा का अमिट स्रोत है । अतः मुमुक्ष या संसारी जन के लिये जीवन है । इस ग्रन्थ से पाठकों को ऐहिक पारत्रिकं लाभ होयेगा ।

शुभ आशीर्वाद

पं0 प्रेम नारायण त्रिवेदी
मंत्र शास्त्री
श्री महाकाली विद्यापीठ, झाँसी

दिनांकः
30-11-1983 ईसवी

सरोज श्रीवास्तव "नलिन"

सामान्य परिचय :-

जन्म 22 मई सन् 1938 ईस्वी। लखनऊ विश्वविद्यालय से सन् 1957-58 में स्नातक की उपाधि। सम्प्रति - श्रीमद्भगवद्गीता के पद्यानुवाद में संलग्न।

पत्राचार के लिये पता :-

श्रीमती सरोज श्रीवास्तव "नलिन"
द्वारा- श्री राजेन्द्र कुमार श्रीवास्तव
1/3, डालीबाग आफिसर्स कालोनी
लखनऊ-226 001 (उ०प्र०)

-0-0-0-

श्री गणेशाय नमः

करुणानिधि श्री राम

प्रथम खण्ड — धर्म

- प्रथम सर्ग - मानस मन्थन
- द्वितीय सर्ग - सम्भाषण
- तृतीय सर्ग - स्मृति दंश

द्वितीय खण्ड — अर्थ

- प्रथम सर्ग - अयोध्या आगमन
- द्वितीय सर्ग - निष्कासन

तृतीय खण्ड — काम

- प्रथम सर्ग - अरण्य-आनन्द
- द्वितीय सर्ग - जीवन-संग्राम
- तृतीय सर्ग - आत्म-क्रन्दन

चतुर्थ खण्ड — मोक्ष

- प्रथम सर्ग - दिव्य दर्शन
- द्वितीय सर्ग - आत्म निवेदन एवं विनय पत्री

-0-0-0-0-0-
-0-0-0-
-0-

सरोज श्रीवास्तव 'नलिन'

प्रथम खण्ड – धर्म

प्रथम सर्ग – मानस मन्थन

गंगा सरस्वती काली माँ
रचना को सम्बोधित करिये ।
जो कुछ त्रुटियाँ हों इस कृति में
उन सबको संशोधित करिये ।। 1

आप 'नलिन' की इस रचना पर
अब ऐसी अनुकम्पा करिये ।
सप्तशती यह बने भक्तिमय
ऐसी कृति में संख्या करिये ।। 2

शक्ति त्रयी की बने त्रिवेणी
मन मेरा बन जाये प्रयाग
अक्षयवट हो जाये रचना
पनपे भाव भक्ति अनुराग ।। 3

जगदगुरु ' श्री रामदास ' के
चरणों में वन्दन करती हूँ ।
शिवस्वरुप साकार मान कर
सादर अभिनन्दन करती हूँ ।। 4

आदर सहित चरणरज .गुरु की
आज ग्रहण करने आई हूँ ।
अपनी राम कहानी गुरु को
मैं अर्पण करने आई हूँ ।। 5

गुरु चरणों में काव्य सुमन का
अति श्रद्धा सहित समर्पण है ।
यह 'करुणानिधि श्री राम' कथा
गुरु 'रामदास' को अर्पण है ।। 6

अर्पण और समर्पण के तो
सब हेतु यहाँ संसारी हैं ।
मिलें राम को राम, राम के
' गुरु रामदास ' अधिकारी हैं ।। 7

सुमन सरोज संजोये अक्षर
शब्द सूत्र में व्यथा पिरोई ।
बन कर बसे सुगन्ध अश्रुकण
व्यथित 'नलिन' जितना भी रोई ।। 8

मेरे भक्तिभाव को गुरु जी
निज चरणों में स्थान दीजिये ।
माँ सरस्वती की सेवा का
मुझको शुभ वरदान दीजिये ।। 9

प्रथम वन्दना है गणपति की
सुरनायक की सिद्धि सदन की ।
विघ्न विनायक मंगल दायक
गिरिजानन्दन शम्भु सुवन की । 10

करिये दयादृष्टि हे गणपति
सफल मनोरथ सब हो जायें ।
बुद्धि सिद्धि की कृपा दृष्टि हो
पाप ताप मेरे धो जायें ।। ।1

प्रभु ! आपके पद सरोज में
पूजा हो स्वीकार 'नलिन' की ।
करूँ समर्पित शब्दमाल यह
श्रद्धामय सुविचार कलिन की ।। ।2

भक्तिभाव मय काव्य लिखूँ मैं
पूर्ण यही अभिलाष कीजिये ।
करुणानिधि की करुण कथा में
श्रद्धामय विश्वास दीजिये ।। ।3

हे सुरनायक मेरी कृति को
अपना दिव्य प्रकाश दीजिये ।
करिये कृपा अनुग्रह मुझ पर
मन मन्दिर में वास कीजिये ।। ।4

(।)

सुख दुःख दोनों हमजोली बन
मेरे जीवन को भरते थे ।
चन्दा सूरज आँख मिचौली
आपस में खेला करते थे ।। ।5

उन्निस सौ इकहत्तर इसवी
मार्च महीना होली के दिन ।
अब गर्मी की छुट्टी होगी
काट रही थी मैं दिन गिन गिन ।। 16

अम्मा की चिट्ठी आती थी
' बेटी तुम जल्दी से आना '।
बापू पत्र लिखा करते थे
'बिटिया हमको भूल न जाना ।। 17

मैं झटपट उत्तर लिखती थी
' छुट्टी होते ही आऊँगी ।
आशा है मैं आप सभी को
कुशल सहित घर पर पाऊँगी' ।। 18

बच्चों की छुट्टी होने पर
अब मुझको मैंके जाना था ।
अपनी माँ से गले लिपट कर
सुख दुःख का हाल सुनाना था ।। 19

बच्चे थे व्यस्त पढ़ाई में
निकट परीक्षा आने वाली ।
मैंने भी मैंके जाने की
पूरी तैयारी कर डाली ।। 20

किन्तु हुई हरि-इच्छा ऐसी
बदल गई हर बात अचानक ।
करुण अन्त हो गया कथा का
उलट पुलट हो गया कथानक ।। 21।

आई एक भयंकर आँधी
दरका दिया रूप दर्पण का ।
जाने कैसी आग लगा दी
लपटें लील गईं सुख मन का ।। 22

(2)

तन जलता था मन जलता था
हर ओर जलन, हर ओर तपन
मैं जिधर देखती दिखे धुँआ
मन जिधर भागता उधर घुटन ।। 23

पीड़ा तप्त शलाका जैसी
अन्तर में जलती रहती थी ।
सुख की आशा मृग तृष्णा बन
मुझको नित छलती रहती थी ।। 24

दिनचर्या अति कष्टसाध्य थी
श्रम से यह तन लगा टूटने ।
घोर निराशा के सागर में
दुःख से यह मन लगा डूबने ।। 25

दुःख के गहरे अन्धकार में
एकाकी भटका करती थी ।
घर आँगन के द्वार खोलकर
उजियारा ढूँढ़ा करती थी ।। 26

किन्तु किसी द्वारे से कोई
किरण न मेरे मन तक आई ।
बन्जर मरुथल हुई कल्पना
निबिड़ निराशा मन पर छाई ।। 27

मुझको जग पागल कहता था
मैं कहती थी जग क्रूर हुआ ।
तब भावों के सम्प्रेषण में
मन मेरा सबसे दूर हुआ ।। 28

वर्तमान दुःख से व्याकुल हो
इच्छायें क्रन्दन करती थीं ।
मम अतीत की सुखमय सुधियाँ
मानस में मन्थन करती थीं ।। 29

आशा और निराशा सहसा
जब आपस में टकरा जातीं ।
चिनगारी उठती घर्षण से
अभिअन्तर को सुलगा जातीं ।। 30

संघर्षण की यही प्रक्रिया
चुपचाप हृदय में चलती थी ।
और इसी से उपजी ज्वाला
दिन रात हृदय में जलती थी ।। 31

एक दिवस अन्तर ज्वाला से
उबल उठा मन मानस मेरा ।
पीड़ा की उमड़ी सजल घटा
पड़ा पलक पर पावस डेरा ।। 32

श्याम घटा में दामिन दमकी
चमक उठा हृदयम्बर ऐसे ।
नील सरोरुह श्याम राम जी
पहने हों पीताम्बर ऐसे ।। 33

दीन बन्धु ने दया दृष्टि से
दुखियारी को उस पल देखा ।
झलकी तभी नयन में उनके
करुणा की तरल सजल रेखा ।। 34

कृपासिन्धु दृगबिन्दु उमड़कर
'नलिन' नयन से लगे बरसने ।
उतर लेखनी से पृष्ठों पर
अक्षर बन कर लगे सरसने ।। 35

इसी तरह से अक्षर बन कर
जो आँसू पृष्ठों पर छहरे ।
' करुणानिधि श्रीराम ' काव्य के
छन्दों में वे आँसू लहरे ।। 36

अब करुणा के अतल सिन्धु में
खेवनहार स्वयं रघुबीर ।
चरण सरोज पखारें निशिदिन
'नलिन' नयन भर भर कर नीर ।। 37

द्वितीय सर्ग – सम्भाषण

जय श्री सीताराम आपका
करती हूँ श्रद्धामय बन्दन ।
भटक रही मैं भवसागर में
करिये पार मुझे रघुनन्दन ।। 38

लोभ मोह में उलझा जीवन
भक्तिभाव का ज्ञान नहीं है ।
किस विधि पूजन अर्चन सम्भव
होता स्थिर मन ध्यान नहीं है ।। 39

इस असार संसार बीच प्रभु
केवल यही लगन है मन में ।
सियराम आपकी सगुण भक्ति
मिल जाये 'नलिन' को जीवन में ।। 40

सियाराम के चरण कमल का
मेरा मन मधुकर बन जावे ।
जब तक रहे देह में प्राण
तब तक गीत उन्हीं के गाये ।। 41

गीतों में ओझल हो जाये
मम उर की हर पीड़ा स्वामी ।
भक्तों के सन्ताप आप तो
स्वयं जानते अन्तर्यामी ।। 42

प्रभु आपका नाम सहारा
मेरे लेखन को मिल जाये ।
लिखवाये कुछ ऐसा मुझसे
जिसमें स्नेह सिन्धु लहराये ।। 43

मैं तो चरण पड़ी हूँ प्रभु जी
मुझको यह वरदान दीजिये ।
धर्म सहिष्णु बनें जन जग के
प्रभु ऐसा मन प्राण दीजिये ।। 44

इतनी श्रद्धा इस जीवन में
मुझे दीजिए सीताराम ।
श्वास श्वास के साथ उमड़कर
आये याद आपका नाम ।। 45

इसी तरह से अक्षर बन कर
जो आँसू पृष्ठों पर छहरे ।
' करुणानिधि श्रीराम ' काव्य के
छन्दों में वे आँसू लहरे ।। 36

अब करुणा के अतल सिन्धु में
खेवनहार स्वयं रघुबीर ।
चरण सरोज पखारें निशिदिन
'नलिन' नयन भर भर कर नीर ।। 37

द्वितीय सर्ग – सम्भाषण

जय श्री सीताराम आपका
करती हूँ श्रद्धामय बन्दन ।
भटक रही मैं भवसागर में
करिये पार मुझे रघुनन्दन ।। 38

लोभ मोह में उलझा जीवन
भक्तिभाव का ज्ञान नहीं है ।
किस विधि पूजन अर्चन सम्भव
होता स्थिर मन ध्यान नहीं है ।। 39

इस असार संसार बीच प्रभु
केवल यही लगन है मन में ।
सियराम आपकी सगुण भक्ति
मिल जाये 'नलिन' को जीवन में ।। 40

सियाराम के चरण कमल का
मेरा मन मधुकर बन जाये ।
जब तक रहे देह में प्राण
तब तक गीत उन्हीं के गाये ।। 41

गीतों में ओझल हो जाये
मम उर की हर पीड़ा स्वामी ।
भक्तों के सन्ताप आप तो
स्वयं जानते अन्तर्यामी ।। 42

प्रभु आपका नाम सहारा
मेरे लेखन को मिल जाये ।
लिखवाये कुछ ऐसा मुझसे
जिसमें स्नेह सिन्धु लहराये ।। 43

मैं तो चरण पड़ी हूँ प्रभु जी
मुझको यह वरदान दीजिये ।
धर्म सहिष्णु बनें जन जग के
प्रभु ऐसा मन प्राण दीजिये ।। 44

इतनी श्रद्धा इस जीवन में
मुझे दीजिए सीताराम ।
श्वास श्वास के साथ उमड़कर
आये याद आपका नाम ।। 45

(।)

अपनी अमित वेदना को मैं
नहीं किसी से कह पाती थी ।
बस अपना प्रारब्ध मान कर
हर पीड़ा को सह जाती थी ।। 46

बचपन में अम्मा बाबू ने
मुझको नित यही बताया था ।
'राम नाम दुःख की औषधि है'
यह मर्म मुझे समझाया था ।। 47

मुझसे सदा कहा करते थे
'राम नाम से दूर न रहना ।
चाहे जितने संकट आयें
राम राम कह कर सब सहना' ।। 48

इसी लिये उनकी सुधियों को
राम नाम से जोड़ लिया था ।
अपनी हर पीड़ा को मैंने
प्रभु चरणों में छोड़ दिया था ।। 49

भक्तिभाव से लगी साधने
अब मैं कर्म योग निष्काम ।
कर्त्तव्यों का पालन करती
जपती राम नाम अविराम ।। 50

अब रुदन भाव की भाषा थी
भाषा में संचित पीड़ा थी ।
बस चुपके चुपके रोने में
अभिराम राम की क्रीड़ा थी ।। 51

प्रभु प्रेरित मम भाव जगत में
लगीं उभरने नई अल्पना ।
चित्रकुट बन गया हृदय था
कामदगिरि बन गई कल्पना ।। 52

चित्रकूट में कामदगिरि पर
जब जब देते राम दिखाई ।
पिता मरण की गहन वेदना
मुख मण्डल पर रहती छाई ।। 53

उधर राम के अन्तरमन में
पितृ स्नेह की सुधि होती थी ।
इधर पिता की स्नेहिल सुधि में
मैं प्रतिपल व्याकुल होती थी ।। 54

सम करुणा से करुणानिधि भी
करुणामय होने लगते थे ।
इधर विकल हो मैं रोती थी
उधर राम रोने लगते थे ।। 55

फिर आत्मा से परमात्मा का
होने लगता था सम्भाषण
भक्त और भगवान भेद का
हो जाता था तब निष्कासन ।। 56

(2)

ओम नगर में मैका मेरा
मैं पति संग रहूँ झाँसी में ।
किन्तु मिलन की राह समय ने
लटका दी थी तब फाँसी में ।। 57

पत्राचार हुआ प्रतिबन्धित
आना जाना बन्द हुआ था ।
तभी राम के संग रो रो कर
प्राप्त परम आनन्द हुआ था ।। 58

मन मन्दिर में सियाराम की
निशिदिन मैं पूजा करती थी ।
और निरन्तर एक प्रश्न ही
उनसे मैं पूछा करती थी ।। 59

लखनऊ और झाँसी के बीच
केवल कुछ मीलों की दूरी ।
मात पिता से मिल न सकूँ मैं
हे प्रभु यह कैसी मजबूरी ?? 60

आती है जब याद पिता की
हृदय बहुत व्याकुल हो जाता।
मात पिता की स्नेहिल सुधि में
मन अति शोकाकुल हो जाता ।। 61।

(3)

इसी तरह से रो रो कर जब
मैंने प्रभु की ओर निहारा।
तब करुणा से दया द्रवित हो
राम भद्र ने मुझे पुकारा ।। 62

अरी 'नलिन' तुम क्यों रोती हो
रहती हो मन मलिन उदास ?
देखो जब जब मैं जन्मा हूँ
पाया है तब तब वनवास ।। 63

मैंने तो युवराज तिलक के
स्वप्न अनेकों अनुपम देखो।
पढ़ पाये हैं पर कब किसने
काल, कर्म के अद्भुत लेखो ?? 64

रंग बिरंगी स्वप्न सृष्टि की
निशा सुन्दरी ने मनमानी।
उसे विखण्डित करने आयीं
सूर्य पूर्व ही ऊषा रानी ।। 65

प्रिय सुमन्त्र के द्वारा मुझको
पूज्य पिता ने बुलवाया था ।
तत्क्षण पहुँचा, किन्तु तात को
असहाय तड़पता पाया था ।। 66

हा ! तात तड़पते रहे और
मैं चकित एक पल खड़ा रहा ।
कह प्रणाम फिर तात चरण में
चुपचाप दण्डवत पड़ा रहा ।। 67

तभी पिता ने हाथ बढ़ाकर
मेरे मस्तक को सहलाया ।
आ न सके पर शब्द अधार तक
विवश स्नेह दृग से ढलकाया ।। 68

हे वत्स राम! हा पुत्र राम!'
बस इतना ही कह सके तात ।
तब छोटी माँ ने प्रेम सहित
समझा दी मुझको सभी बात ।। 69

"वर उभय भूप ने दिये मुझे
यह राज्य भरत के पास रहे ।
चौदह वर्षों तक पुत्र तुम्हें
गृह त्याग रहे वनवास रहे ।। 70

वर देकर मुझको जाने क्यों
अति विकल तड़पने लगे नाथ ?
ये सूर्य वंश के स्वामी हैं
इस भाँति पड़े ज्यों हों अनाथ ।। 71।

(4)

बस पल भर का असमंजस था
मैं कर्म यज्ञ करने निकला ।
निज माता से आज्ञा लेकर
पूर्ण पिता-प्रण करने निकला ।। 72

पति परायणा सिया न मानी
चल दीं मेरे साथ विजन को ।
छाया सम चल पड़े लखन भी
कोई रोक न पाया उनको ।। 73

आकर फिर से तात चरण में
मैंने दण्ड प्रणाम किया था ।
व्याकुल नयन तात ने खोले
लखान सिया का नाम लिया था ।। 74

"हो गई अनाथ अयोध्या अब"
कह कर मूर्छित हो गये तात ।
बस ये ही अन्तिम दर्शन थे
मन की मन में रह गई बात ।। 75

काल कर्म के क्रूर जाल में
रहे तड़पते तात भवन में।
मम अनुगामी सिया लखन भी
रहे भटकते साथ विजन में।। 76

राज भवन में कैसा क्या था
घटित हुआ क्या प्रजाजनों में ?
मात पिता की कुशल क्षेम भी
कौन बताता हमें वनों में ?? 77

(5)

सहसा एक दिवस निर्जन में
दिखी दूर पर उड़ती धूल।
जैसे चक्रवात आया हो
उस वन जीवन के प्रतिकूल।। 78

आते हुये दिखे फिर मुझको
भाई भरत बने सन्यासी।
और साथ में आये उनके
व्याकुल सभी अयोध्यावासी।। 79

परिजन, पुरजन और गुरुजन
मुझको वापस लेने आये।
पिता मरण के दारुण दुःख का
समाचार भी संग में लाये।। 80

माताओं का वेष देख कर
धैर्य हृदय को छोड़ गया था ।
और धधकती ज्वालाओं से
मन का नाता जोड़ गया था ।। 81

माताओं के श्वेत वस्त्र में
दिखी कालिमा गहरे दुःख की ।
किसी हृदय में दिखी न मुझको
परछाँई भी कोई सुख की ।। 82

(6)

पिता मरण की व्यथा कथा भी
मुझे न कर पायी निष्प्राण ।
आज्ञा पालन के बन्धन में
बंधे हुये थे मेरे प्राण ।। 83

चौदह वर्षों तक तो मुझको
निर्जन वन में रहना ही था ।
पूज्य पिता की वचन-बद्धता-
के प्रति, इसको सहना ही था ।। 84

राज तिलक की सब सामग्री
भाई अपने साथ लिये थे ।
मेरा राज तिलक करने को
तर्क अकाट्य अनेक दिये थे ।। 85

लेकिन मेरे लिये पिता की
आज्ञा ही कर्त्तव्य प्रथम था ।
इसी लिए तब राजा बनना
मेरे लिये नहीं उत्तम था ।। 86

पूर्ण पिता का प्रण करना था
चिन्ता थी बस इसी विषय की ।
इसीलिए तब हाथ जोड़ कर
मैंने सबसे यही विनय की ।। 87

पालन करुँ पिता की आज्ञा
मुझे आप सहयोग दीजिये ।
केवल चौदह वर्षो तक ही
मुझे क्षमा सब लोग कीजिये ।। 88

(7)

चले गये सब लोग अयोध्या
मैं वन में रह गया अकेला ।
सीता और लखान के संग ये
अद्भुत खेल नियति ने खेला ।। 89

मुझको तो आज्ञा पालन का
हर दुःख के साथ सहारा था ।
लेकिन मेरे लिये उन्होंने
वनवास स्वयं स्वीकारा था ।। 90

मेरी सेवा में वे दोनों
प्रतिपल अति तत्पर रहते थे ।
मेरे लिये भयंकर वन के
दुःख, संकट हँस कर सहते थे ।। 91

उनकी निश्छल सेवा, मेरे -
जीवन का सबल सहारा थी ।
मन की तपन बुझा पाने को
अति शीतल सी जलधारा थी ।। 92

लेकिन मैं अपने अन्तर में
एक यवनिका डाले रहता ।
अपने अभिअन्तर की पीड़ा
उन दोनों से कभी न कहता ।। 93

(8)

तड़प तड़प कर देह त्याग दी
पूज्य पिता ने मेरे कारण ।
यह दुःख शैलशिखर सा अविचल
सम्भव जिसका नहीं निवारण ।। 94

मेरे मन में यही वेदना
ज्वाला सी जलती रहती थी ।
मेरे निश्छल प्रेम भाव को
यही नित्य छलती रहती थी ।। 95

इस ज्वाला से उन दोनों को
सदा बचाये ही रहता था ।
इसी लिये एकाकी बन कर
असह वेदना को सहता था ।। 96

यदि मैं अपनी व्यथा कथा का
उनके सम्मुख वर्णन करता ।
तो निश्चय ही उन दोनों के
नयनों से भी निर्झर झरता ।। 97

मेरे लिये कठिन हो जाता
उन दोनों के आँसू सहना ।
अधिक सहज था निज पीड़ा के -
साथ सदा एकाकी रहना ।। 98

अपने दुःख से उन दोनों को
दुखी भला क्यों होने देता ?
मैं तो उनका अभिभावक था
उनको कैसे रोने देता ?? 99

उनके लिये विहँसता था मैं
उनके लिये सुखी रहता था ।
उनको दुखी न होने देता
मैं भी दुखी नहीं रहता था ।। 100

फिर भी अपने अभिअन्तर की
ज्वाला में जलता रहता था ।
सुख दुःख दोनों का आपस में
द्वन्द्व युद्ध चलता रहता था ।। ।01।

ऐसी पीड़ा सहने में भी
मेरा अपना स्वार्थ निहित था ।
क्योंकि सुखी रखाना दोनों को
मेरे प्रति कर्त्तव्य विहित था ।। ।02

(9)

जैसे तुम अपने बच्चों को
अपनी पीड़ा नहीं बतातीं ।
अपने दुःख सन्ताप सुना कर
उन लोगों को नहीं रुलातीं ।। ।03

मन में सदा सिसकती हो पर
उनके सम्मुख मुस्काती हो ।
उनको हँसता हुआ देख कर
अपने अश्रु छिपा जाती हो ।। ।04

ऐसे ही मैं सिया लखन से
अपने अश्रु छिपा जाता था ।
अपने मन का अन्धकार मैं
उनको नहीं दिखा पाता था ।। ।05

उन दोनों का निश्छल प्रेम
मैंने प्रतिपल प्राप्त किया था ।
किन्तु छिपा कर अपनी पीड़ा
मोल स्वयं एकान्त लिया था ।। 106

मात पिता के पुत्र प्रेम की -
सुधियों का मन में मेला था ।
उस मेले के बीच घिरा मैं
निर्जन में निपट अकेला था ।। 107

(10)

'नलिन'! तुम्हें तो मात पिता के
दर्शन कुछ दिन बाद मिलेंगे ।
और तुम्हारे जीवन में फिर
सुखद स्नेह के सुमन खिलेंगे ।। 108

लेकिन मेरे पूज्य पिता श्री
स्वर्ग धाम को चले गये थे ।
पिता पुत्र के प्रेम भाव ये
देखो कैसे छले गये थे ?? 109

चौदह वर्षों बाद लौट कर
पुनः अयोध्या जब जाऊँगा ।
तब मैं अपने पूज्य पिता के
दर्शन कैसे कर पाऊँगा ?? 110

हृदय कहेगा चलो दौड़ कर
करो पिता को दण्ड प्रणाम ।
किन्तु दिखेगा मुझे भयावह
पिता रहित सूना वह धाम ।। ।।1

पितृहीन सूनी नगरी में
कैसे पुनः प्रवेश करुँगा ?
प्रण पूरा कर लाने वाली
जा कर किससे बात कहूँगा ?? ।।2

ये विचार ही कण्टक जैसे
उर में सदा कसकते रहते ।
प्रश्न अनेकों फन फैला कर
विषधर जैसे डसते रहते ।। ।।3

(।।)

जैसे मात पिता की सुधि में
आकुल व्याकुल तुम होती हो ।
भरी भीड़ में बनी अकेली
चुपके चुपके तुम रोती हो ।। ।।4

ऐसे ही मैं मात-पिता की
सुधि में नित रोया करता था ।
लखन सिया के संग विहँस कर
इस दुःख को खोया करता . था ।। ।।5

अन्तर में रोते रहकर भी
ऊपर से हँसता रहता था ।
धर्म, कर्म, कर्त्तव्य सभी मैं
दृढ़ता से करता रहता था ।। ।।6

केवल रो रो कर ही कोई
नहीं समय को जीत सका है ।
केवल रोते रहने से ही
दुर्दिन किसका बीत सका है ।। ।।7

उठो 'नलिन' कर्त्तव्यों के प्रति
हँस कर आत्म समर्पण कर दो ।
सुख दुःख तुम्हें मिले जोकुछ भी
वह सब मेरे अर्पण कर दो ।। ।।8

सुख दुःख रहित पूर्ण निश्चिन्त
परमानन्द मग्न हो जाओ ।
निर्लिप्त भाव से कर्म करो
उत्तम भक्त रत्न हो जाओ ।। ।।9

तृतीय सर्ग – स्मृति दंश

जय जय जय हे सरस्वती माँ
वीणापाणी भुवन भारती ।
दीपक बन कर सदा आपकी
करें 'नलिन' के नयन आरती ।। ।20

कविकुल वन्दित पूज्य प्रेरणा
अखिल विश्व की सुमधुर वाणी ।
भाव जगत की शक्ति स्वरुपा
कला कल्पनामय कल्याणी ।। ।21।

मम विचार के तारों में माँ
राग छेड़िये राम भक्ति का ।
मिले आपकी अनुकम्पा से
मुझे मार्ग अभिराम शक्ति का ।। ।22

मानस हंस बने माँ वाहन
हृदय कमल में वास कीजिये ।
मेरी रचनाओं को अम्बे
अपना प्रेम प्रकाश दीजिये ।। ।23

'करुणानिधि श्रीराम' काव्य को
लिखने का वरदान दीजिये।
सिया राम की सगुण भक्ति का
मुझको ज्ञान प्रदान कीजिये ।। ।24

अम्बे मेरी पकड़ लेखानी
अन्तः करुणा स्रवित कीजिये ।
वज्र कठोर हृदय को भी माँ
उस करुणा से द्रवित कीजिये ।। ।25

इस अबला के ऊपर अम्बे
अपनी दया दृष्टि अब करिये ।
भव तापों को हरने वाली
ममतामयी वृष्टि अब करिये ।। ।26

(।)

प्रभु ने सरल सुबोध शब्द से
मम उर की अनुभूति जगा दी ।
दीन बन्धु ने दीन दुखी के
मन की सब भव-भीति भगा दी ।। ।27

अब तो मैंने व्यथा घोल कर
सुन्दर स्याही नई बना ली ।
और तड़पते अन्तरमन के
अनुभव लेकर कलम चला दी ।। ।28

उड़ी कल्पना पता लगाने
किस विधि श्री राम रहे होंगे ?
चौदह वर्ष विपिन में कैसे
सुधियों के दंश सहे होंगे ?? ।29

सीता और लखन के संग जब
होता होगा प्रिय सम्वाद ।
तभी अयोध्या की कुछ बातें
आती होंगी सहसा याद ।। ।30

जब सुधियों के बिम्ब उभर कर
शब्दों पर छा जाते होंगे ।
कण्ठस्थल पर भावोद्वेलन
उमड़ घुमड़ घहराते होंगे ।। ।31

रुद्ध कण्ठ से विवश हुये तब
राम मौन रह जाते होंगे ।
सरस स्नेह के उस प्रवाह में
अनायास बह जाते होंगे ।। ।32

लेकिन सहसा मुखमण्डल पर
लाते होंगे भाव कठोर ।
जिससे सीता और लखन जी
देख न पायें उनकी ओर ।। ।33

सीता और लखन को रघुवर
अन्य भाव दिखलाते होंगे ।
दिखा क्रोध का झूठा उपक्रम
भरा कण्ठ सहलाते होंगे ।। ।34

(2)

कभी कभी जब निर्जन वन में
पुरवाई का आना होता ।
काले मेघों में चित्रों का
बन बन कर मिट जाना होता ।। ।35

लगता होगा तब रघुवर को
घन का कोई नर आकार ।
जैसे खोल गगन की खिड़की
खड़े पिता दशरथ साकार ।। ।36

जगत पिता तब पिता दरस को
व्याकुल बेबस तरसे होंगे ।
नील कमल सम नयन राम के
मेघों के संग बरसे होंगे ।। ।37

विकल विरागी राम रात भर
चुपके चुपके रोये होंगे ।
सहसा लगा जानकी जागीं
बना बहाना सोये होंगे ।। ।38

(3)

सदा साथ थीं सिया संगिनी
फिर भी पास न सुख आया था ।
राज तिलक तो हो न सका पर
पिता मरण का दुःख पाया था ।। ।39

व्यथित राम को लगता होगा
तड़प रहे दशरथ निरुपाय ।
क्या पाया था कैकेयी ने
बेटे से करके अन्याय ।। ।40

चूड़ी टूटी वैधव्य मिला
खो दिया पुत्र का स्वयं प्यार ।
चौदह वर्ष वियोगिन नगरी
करती रह गई हाहाकार ।। ।41

(4)

प्रेम पिता का अपने प्रति जब
याद राम को आता होगा ।
कण्टक माँ की निर्ममता का
अन्तर में विंधा जाता होगा ।। ।42

अन्तर्तम की अमित, वेदना
उमड़ नयन तक आती होगी ।
विवश उदासी बनी विकलता
आनन पर छा जाती होगी ।। ।43

"हुआ नाथ क्या?" जब जिज्ञासा
सीता ने सहसा की होगी ।
"पड़ी किरकिरी" कह कर पीड़ा
पलकों से बरसा दी होगी ।। ।44

(5)

जब पतझर पश्चात बनों में
ठूँठ खड़े रह जाते होंगे ।
अंधियारी रातों में भय के
काले सपने आते होंगे ।। ।45

निशिगामी पशु - पक्षी का स्वर
सुन रघुवर उठ जाते होंगे ।
तब आकुल मन अन्धकार में
माँ का ध्यान लगाते होंगे ।। ।46

राज महल में माताओं का
रुदन सुनाई देता होगा ।
जिसको सुन कर हंस वंश का
सूर्य मलिन हो जाता होगा ।। ।47

माँ की सुधि में बेसुध होकर
राम विकल हो जाते होंगे ।
स्वयं हृदय को समझाने में
राम विफल हो जाते होंगे ।। ।48

(6)

शशि किरणें जब पर्णकुटी पर
उतर गगन से आती होंगी ।
सीता बैठी गुन गुन स्वर में
गीत मधुरतम गाती होंगी ।। ।49

थिरक उठा होगा रघुवर मन
पास सिया के आया होगा ।
पर अवचेतन मन जाकर घर
माता से मिल आया होगा ।। ।50

विकल हुई दशरथ की सुधि में
मातायें सब रोई होंगी ।
उलझे बिखरे होंगे केश
बेसुध हो जब सोई होंगी ।। ।51।

अवचेतन के इसी भाव का
बना सचेतन मन सहभागी ।
और अचानक राम हृदय में
असमय अमित वेदना जागी ।। ।52

लगी राम को तभी तीर सी
सीता के गीतों की भाषा ।
और वहाँ के सरस दृश्य की
लगी बदलने हर परिभाषा ।। ।53

(7)

कामदगिरि में दूर दूर तक
विविधाकार विपुल चट्टानें ।
शुभ्र ज्योत्सना ओढ़े तन पर
सोईं रात अलस अनजाने ।। ।54

उनके ऊपर पड़ी हुई थीं
झँखरीले ठूँठों की छाया ।
जैसे औंधे मुँह लेटी हों
बाल बिखेरे नारी काया ।। ।55

पवन संग हिलते ठूँठों की
हिलने लगती थीं प्रतिछाया ।
जैसे दीर्घ श्वास लेती हों
व्याकुल बेसुध नारी काया ।। ।56

यही दृश्य दिख गया राम को
हो गया हृदय पर बज्राघात ।
लहके महके मन उपवन पर
सहसा हुआ तुषारापात ।। ।57

माँ के उलझे खुले केश सी
लगीं उन्हें ठूँठों की छाया ।
और चन्द्रिका कफन बनी ज्यों
ढँके हो दशरथ की काया ।। ।58

शिथिल हुये हर अंग राम के
पग न बढ़ा पाये फिर आगे ।
सोने को कह सिया प्रिया से
स्वयं रात भर अपलक जागे ।। ।59

लगी गरल सी उन्हें चन्द्रिका
लगा विश्व यह कारागार ।
गहरे वितृष्णा सागर का
नहीं सूझता पारावार ।। ।60

(8)

मधुर मनोरम मधुऋतु आई
सूखे ठूँठ लगे हरियाने ।
डाली डाली कलियाँ झूलीं
लगे भ्रमरदल गुन गुन गाने ।। ।61।

खगकुल कलरव गूँज उठा था
अंगड़ाई ले उठीं दिशायें ।
पवन झकोरे पाकर झूमीं
झाड़ी बन अगणित रम्भायें ।। ।62

अरुणिम किरणें उतर उतर कर
मन्दाकिनी पर लगीं फिसलने ।
क्षितिज गुलाल थाल भर लाया
कामदगिरि के मुख पर मलने ।। ।63

शीतल मन्द पवन बरबस ही
लगा उमड़ आलिंगन करने ।
सहज प्रकृति की मंजुल सुषमा
लगी हृदय को हर्षित करने ।। ।64

बौराई डालों की शोभा
स्वर सप्तक को लगी सजाने ।
मुखार हुआ संगीत स्वयं ही
पुलकित राम लगे कुछ गाने ।। ।65

सहसा छुआ राम ने झुक कर
पुष्पित, सुरभित, मुदित लता को ।
चरणों में झर पड़ी ओस तब
वर्णित करती अमित व्यथा को ।। ।66

पीड़ा का संस्पर्श तरल यह
लगा राम का हृदय जलाने ।
तभी अचानक कण्ठ भर गया
लोचन लगे नीर बरसाने ।। ।67

क्योंकि राम को दिखी, धरा के-
आँचल पर झर आई ओस ।
उनको लगा रात भर जैसे
रोतीं कौसल्या निर्दोष ।। ।68

राम मातु दशरथ पत्नी वे
ज्यों सजीव सत की परिभाषा ।
विधि ने कैसा भाग्य लिखा यह
रही अधूरी हर अभिलाषा ।। ।69

(9)

सूर्योदय पश्चात द्विप्रहरी
जब कानन पर आ जाती थी ।
तनिक उनींदी अलस भावना
सिय आनन पर छा जाती थी ।। ।70

करतीं तब विश्राम जानकी
वृक्षों की शीतल छाया में ।
किन्तु राम चिन्तातुर होकर
खो जाते अपनी माया में ।। ।71

देख उनींदि नयन राम के
लक्ष्मण दूर चले जाते थे ।
तब सन-सन सन्नाटे में, बस
राम अकेले रह जाते थे ।। ।72

निद्रावश हो गये, सिया के
नयन स्वप्न अनुरागी बन कर ।
किन्तु राम का राग न जागा
बैठे रहे विरागी बन कर ।। ।73

ग्रीष्म काल की तप्त द्विप्रहरी
ऊष्म पवन था जिसका प्रहरी ।
लगती जैसे हुई प्रवाहित
त्रिविध ताप की सरिता गहरी ।। ।74

तभी राम को लगा कि जैसे
उनका अन्तस बिखर गया है ।
वातावरण तापमय बन कर
पूर्ण धरा पर छहर गया है ।। 175

(10)

रघुवर का सामीप्य सिया को
लगता था सब सुख का मूल ।
इसीलिये रहती थीं वन में
सुखपूर्वक हर दुःख को भूल ।। 176

अपने पति की सेवा में ही
मिलता था उनको आनन्द ।
पति सेवा ही उनका सुख था
पति सेवा ही परमानन्द ।। 177

लक्ष्मण के सुख दुःख का उनको
रहता था कुछ ऐसे ध्यान ।
जैसे माता को रहता है
बालक की इच्छा का ज्ञान ।। 178

वन के कुँज, लता, द्रुम, पल्लव
सीता को प्यारे लगते थे ।
सहज प्रकृति के दृश्य सुहाने
सब जग से न्यारे लगते थे ।। 179

सीता जी की पर्ण कुटी में
खग, मृग की रहती थी भीड़ ।
राज महल लगने लगता था
वन में वह छोटा सा नीड़ ।। ।80

(।।)

सुमन वाटिका बनी हुई थी
पर्ण कुटी के चारों ओर ।
जिसमें द्विज गुँजन करते थे
नाचा करते सुन्दर मोर ।। ।8।

सीता और लखन ने मिल कर
अति सुन्दर सुमन लगाये थे ।
केला, आम, अनार आदि के
सुमधुर फल-वृक्ष उगाये थे ।। ।82

तितली भ्रमर आदि पीते थे
मधुमय फूलों का मकरन्द ।
पवन झूमता रहता लेकर
उन फूलों की मधुर सुगन्ध ।। ।83

कभी कभी श्री राम स्वयं ही
सुमन तोड़ कर ले आते थे ।
सीता के सुन्दर केशों में
वेणी भी स्वयं सजाते थे ।। ।84

मृग छौना बन नन्हाँ बालक
भाव जगत पर छाया होगा ।
तभी अचानक अपना बचपन
नयनों में भर आया होगा ।। ।90

सन्ध्या समय मुदित मन दशरथ
राज भवन में आये होंगे ।
माँ का आँचल छोड़ राम ने
उधर हाथ फैलाये होंगे ।। ।9।

अति अनुराग सहित दशरथ ने
सुत को कण्ठ लगाया होगा ।
बाहों का मृदु बना पालना
बारम्बार झुलाया होगा ।। ।92

नभ मण्डल में चन्दा मामा
दशरथ ने दिखलाया होगा ।
तभी राम को कौसल्या ने
अपने पास बुलाया होगा ।। ।93

नहीं नहीं कह कर रघुवर ने
नन्हीं बाँहें जकड़ी होंगी ।
और पिता के स्वर्ण मुकुट की
मुक्ता लड़ियाँ पकड़ी होंगी ।। ।94

तभी राम को लगा कि जैसे
उनका अन्तस बिखर गया है ।
वातावरण तापमय बन कर
पूर्ण धरा पर छहर गया है ।। 175

(10)

रघुवर का सामीप्य सिया को
लगता था सब सुख का मूल ।
इसीलिये रहती थीं वन में
सुखपूर्वक हर दुःख को भूल ।। 176

अपने पति की सेवा में ही
मिलता था उनको आनन्द ।
पति सेवा ही उनका सुख था
पति सेवा ही परमानन्द ।। 177

लक्ष्मण के सुख दुःख का उनको
रहता था कुछ ऐसे ध्यान ।
जैसे माता को रहता है
बालक की इच्छा का ज्ञान ।। 178

वन के कुँज, लता, द्रुम, पल्लव
सीता को प्यारे लगते थे ।
सहज प्रकृति के दृश्य सुहाने
सब जग से न्यारे लगते थे ।। 179

सीता जी की पर्ण कुटी में
खग, मृग की रहती थी भीड़ ।
राज महल लगने लगता था
वन में वह छोटा सा नीड़ ।। ।80

(।।)

सुमन वाटिका बनी हुई थी
पर्ण कुटी के चारों ओर ।
जिसमें द्विज गुँजन करते थे
नाचा करते सुन्दर मोर ।। ।8।

सीता और लखन ने मिल कर
अति सुन्दर सुमन लगाये थे ।
केला, आम, अनार आदि के
सुमधुर फल-वृक्ष उगाये थे ।। ।82

तितली भ्रमर आदि पीते थे
मधुमय फूलों का मकरन्द ।
पवन झूमता रहता लेकर
उन फूलों की मधुर सुगन्ध ।। ।83

कभी कभी श्री राम स्वयं ही
सुमन तोड़ कर ले आते थे ।
सीता के सुन्दर केशों में
वेणी भी स्वयं सजाते थे ।। ।84

किन्तु सजाते समय, राम को,
सीता की वेणी में फूल ।
जाने क्यों दिखने लगती थी
कहीं दूर पर उड़ती धूल ।। 185

लगने लगता था तब उनको
जैसे भाई भरत आते हों ।
उनके कमल नयन निर्झर से
अविरल अश्रु झरे जाते हों ।। 186

तभी राम को चुभने लगते
उन कोमल पुष्पों में त्रिशूल ।
और प्रेयसी का आलिंगन
फिर जाता था उनको भूल ।। 187

(12)

सन्ध्या समय शिला पर बैठी
सीता जब सुस्ताती होंगी ।
लिये गोद में मृग छौने को
स्नेह सहित दुलराती होंगी ।। 188

ममता का संकेत मौन यह
तभी राम ने पाया होगा ।
विविध विचारों ने घिरघिर कर
अन्तर्द्वन्द्व मचाया होगा ।। 189

मृग छौना बन नन्हाँ बालक
भाव जगत पर छाया होगा ।
तभी अचानक अपना बचपन
नयनों में भर आया होगा ।। ।90

सन्ध्या समय मुदित मन दशरथ
राज भवन में आये होंगे ।
माँ का आँचल छोड़ राम ने
उधर हाथ फैलाये होंगे ।। ।9।

अति अनुराग सहित दशरथ ने
सुत को कण्ठ लगाया होगा ।
बाहों का मृदु बना पालना
बारम्बार झुलाया होगा ।। ।92

नभ मण्डल में चन्दा मामा
दशरथ ने दिखलाया होगा ।
तभी राम को कौसल्या ने
अपने पास बुलाया होगा ।। ।93

नहीं नहीं कह कर रघुवर ने
नन्हीं बाँहें जकड़ी होंगी ।
और पिता के स्वर्ण मुकुट की
मुक्ता लड़ियाँ पकड़ी होंगी ।। ।94

पुलकित होकर तभी पिता ने
और अधिक दुलराया होगा ।
गद्‌गद् होकर कौसल्या ने
प्रभु को धन्य मनाया होगा ।। 195

उसी पिता के लिये पुत्र ये
बना मृत्यु का दुःखमय कारण ।
उपजी आत्मघृणा अन्तर में
दुर्गम जिसका हुआ निवारण ।। 196

लगा कि यह संसार व्यर्थ है
है अनर्थ अब जीवित रहना ।
आत्मघात भीं कर न सके पर
पितु-आज्ञा थी पूरित करना ।। 197

पितृ शोक था जगत पिता को
फिर भी किया 'धर्म' का पालन ।
कर्म-यज्ञ की आहुति बन कर
करने लगे श्वास संचालन ।। 198

द्वितीय खण्ड – अर्थ

प्रथम सर्ग – अयोध्या आगमन

हे पवन पुत्र तव चरणों में
मैं करबद्ध नमन करती हूँ ।
पतितपावन नाम आपका
भक्ति सहित सुमिरन करती हूँ ।। 199

संकट मोचन आप 'नलिन' की
विनय यही स्वीकार कीजिये ।
राम भक्ति की राह दिखाकर
दीनों का उद्धार कीजिये ।। 200

राम विरह के सागर में जब
भरत शोक से डूब रहे थे ।
पवन - वेग से पहुँच आपने
तभी सुधामय वचन कहे थे ।। 201

सियाराम के प्रिय दर्शन को
मेरे भी नेत्र तरसते हैं ।
किन्तु निराशा भरे मेघ ही
नयनों से नित्य बरसते हैं ।। 202

कब होंगे मुझको शुभ दर्शन
कुछ आशामय वचन बोलिये ।
स्वयं आप ही प्रहरी प्रभु के
देव द्रवित हो द्वार खोलिये ।। 203

(।)

रात्रि गमन पश्चात स्वतः ही
सूर्य देव का ज्यों उग आना ।
इसी तरह से किसी अवधि का
शास्वत नियम स्वयं चुक जाना ।। 204

ऐसे ही चौदह वर्षों का
अन्तराल चुक गया अचानक ।
हर्षित होकर उठी अयोध्या
पढ़ने को अब नया कथानक ।। 205

हनुमत साधु विप्र बन आये
लिये साथ में शुभ सन्देश ।
"सिया लखन श्री राम आ रहे
किये हुये वनवासी वेष" ।। 206

सुनते ही सन्देश अयोध्या
वर्षानद सी उमड़ पड़ी थी ।
चौदह वर्षों बाद आज फिर
आई सुन्दर सुखद घड़ी थी ।। 207

चौदह वर्षों बाद महावर
आज अयोध्या ने घोला था ।
इसी अवधि पश्चात अवध में
पायल का घुँघरू बोला था ।। 208

प्रमुदित मन से मातु सुमित्रा
माणिक मुक्ता वार रहीं थीं।
पुलकित मन कैकेयी माता
घर आंगन उजियार रहीं थीं।। 209

पलक पांवड़े बिछा द्वार पर
कौसल्या इस भाँति खड़ी थीं।
ज्यों सजीव करुणा की काया
चौखट में बन मूर्ति जड़ी थीं।। 210

(2)

इस धरती पर नहीं मिलेंगी
कहीं सुमित्रा जैसी माता।
पुत्र मोह से बढ़ कर जिनको
निज कर्त्तव्य निभाना आता।। 211

अपने और उर्मिला के हित
मोल स्वयं सन्ताप लिया था।
भ्रातृ - भक्ति का सदुपदेश पर
लखनलाल को आप दिया था।। 212

रहा उन्हें यह गर्व सदा ही
लक्ष्मण के स्वामी हैं राम।
रघुकुल के इतिहास लेखा में
वन्दनीय हैं उनका नाम।। 213

उनके पूज्य चरण में हम सब
श्रद्धा सहित करें नित वन्दन ।
जिन चरणों में दण्ड प्रणाम
करते थे श्री दशरथ नन्दन ।। 214

(3)

धन्य धन्य कैकेयी माता
जो वनवास निमित्त बनीं थीं ।
राम कथा अमृत देने को
दो वर माँग विपत्ति बनीं थीं ।। 215

अपने ही इच्छावर उनको
चुभते थे बन बन कर शूल ।
दोनों वर लेकर आये थे
उनके लिए समय प्रतिकूल ।। 216

वर पाकर भी उन्हें अन्ततः
भीषण पश्चाताप हुआ था ।
उनके जीवन का विनाश तो
उनके द्वारा आप हुआ था ।। 217

अमर रहेगी राम कथा यह
जब तक सूरज चाँद रहेंगे ।
कैकेयी माता को तब तक
लोग स्वार्थ का नाम कहेंगे ।। 218

किन्तु अगर वनवास न होता
तो बनती कैसे रामायण ?
और भक्त जन भाव विह्वल हो
करते क्यों उसका पारायण ?? 219

अतः झुकाओ जननि चरण में
श्रद्धा भक्ति सहित नित शीष ।
यह अमृतमय राम कथा है
केवल उनका ही आशीष ।। 220

(4)

चरण - कमल कौसल्या माँ के
पूज्यनीय हैं वन्दनीय है ।
नारद, शेष, शारदा से भी
उनकी महिमा अकथनीय है ।। 221

जिनकी महिमा के वश होकर
अवतरित हुये श्री राम यहाँ ।
उनकी यशगाथा गाने को
उपयुक्त मिलेंगे शब्द कहाँ ?? 222

अतः जननि के चरणों में ही
वन्दन बारम्बार कीजिये ।
सियाराम की सगुण भक्ति का
लूट सकल भण्डार लीजिये ।। 223

(5)

आने वाले हैं रघुराई
दसों दिशाओं में कोलाहल ।
घुमड़ उठा आनन्द हृदय में
नयनों में उमड़ा गंगाजल ।। 224

पुष्पक तभी क्षितिज में उगता
बाल सूर्य सा दिया दिखाई ।
श्रद्धा स्नेह पगे स्वर गूँजे
जै रघुनन्दन जै रघुराई ।। 225

पुष्पक से उतरे वनवासी
बन्धु सखा संग सीताराम ।
सुख के आँसू छल छल छलके
पुलका उर प्रान्तर अभिराम ।। 226

सर्व प्रथम जब गुरु चरणों में
उन लोगों ने शीश झुकाया ।
लगा तृषित की प्यास बुझाने
चल कर स्वयं जलाशय आया ।। 227

प्रजाजनों से मिले राम फिर
बोले वचन जिसे जो भाया ।
यथा उचित व्यवहार वहाँ पर
सबने सबके साथ निभाया ।। 228

जन समूह के बीच अकेले
राम भरत से ऐसे भेंटे ।
माया की कठपुतली बन ज्यों
एक जीव दो देह समेटे ।। 229

चले महल की ओर राम फिर
मन में कुछ अकुलाते ऐसे ।
यहीं कहीं पर खड़े हुये हों
दशरथ उन्हें बुलाते जैसे ।। 230

सुखी हुये सब अवध निवासी
श्री राम सिया की जै बोलीं ।
किन्तु न माँग भरी माता ने
ना दशरथ ने आँखें खोलीं ।। 231

(6)

चले मुदित मन सबके साथ
राज भवन को राम जानकी ।
उमड़ पड़ी कोकिल कण्ठों से
स्वर लहरी तब मधुर गान की ।। 232

लेकर मंगलथाल सुहागिनीं
करें आरती द्वारे द्वारे ।
पग पग मुक्ता चौक पूर कर
डग डग बाँधे बन्दनवारे ।। 233

इधर तीन वनवासी व्याकुल
उधर तीन विधवा मातायें ।
धीरे धीरे पास आ रहे
काट समय की कटु बाधायें ।। 234

कितना हृदय विदारक क्षण था
नहीं लेखनी लिख सकती है ।
इतना निर्मम सत्य सामने
देख कल्पना भी थकती है ।। 235

विमल भाव से उन तीनों ने
कैकेयी के चरण छुये थे ।
उनको गले लगाकर माँ ने
कोटिक अशीर्वाद दिये थे ।। 236

मातु सुमित्रा से मिलने जब
राम जानकी लक्ष्मण आये ।
कण्ठ हुआ अवरुद्ध प्रेमवश
बन आशीष नयन जल छाये ।। 237

मातु सुमित्रा से मिलकर फिर
कौसल्या - चरणों को भेंटा ।
माँ कौसल्या हर्ष विह्वल
कहती थीं बस ' बेटा बेटा ' ।। 238

(7)

समय हर्ष का लेकिन मन में
एक विषाद उमड़ आता था ।
राज महल का हर कोना ज्यों
दशरथ दशरथ चिल्लाता था ।। 239

दृग में आँसू मन में आँसू
आँसूमय ज्यों यहाँ सर्द था ।
आँसू आँसू केवल आँसू
जैसे कोई अश्रु पर्व था ।। 240

नयन नयन की यमुना गंगा
आज अयोध्या में लहरायीं ।
मानों वेगवती आतुर हो
सरयू से मिलने को आयीं ।। 241

तभी महल में गुरु वशिष्ठ ने
विप्रों के संग किया प्रवेश ।
ज्वार देखने लगे ठिठक कर
करुणा सागर का अनिमेष ।। 242

विप्र जनों का धीर हृदय भी
उस करुणा से द्रवित हो गया ।
अन्तर्हित अनुराग स्वयं ही
बन लोचन जल स्रवित हो गया ।। 243

विदा हुये हैं दशरथ घर से
लगता था बस अभी आज ही ।
गुरु ने देखा करुणा रस में
डूब रहा सारा समाज ही ।। 244

शान्त धीर गम्भीर स्वरों में
गुरु ने सबको धैर्य बंधाया ।
" आना जाना जीना मरना
यह तो है सब प्रभु की माया ।। 245

नई सृष्टि के लिये बीज बन
पके हुये फल झर जाते हैं ।
महापुरुष मर्यादा के हित
हँसते हँसते मर जाते हैं ।। 246

राजतिलक है आज राम का
करो निछावर माणिक हीरे ।
चौदह भुवन निमन्त्रित करती
आज अयोध्या सरयू तीरे ।। 247

राजतिलक देखों रघुवर का
अहो धन्य सौभाग्य हमारे ।
परम ब्रह्म - आनन्द स्वयं ही
आया आज हमारे द्वारे ।। 248

इस असार संसार बीच बस
अजर अमर स्वर मर्यादा का ।
मर्यादा पुरुषोत्तम प्रभु की
युग युग फहरे पुन्य पताका ।।" 249

(8)

राजतिलक हो गया राम का
तीनों लोकों में सुख छाया ।
किन्तु राम को दुःख सहना था
राम राज्य की देखो माया ।। 250

उतर पड़ा मधुमास महल में
सुख सौरभ सा लगा महकने ।
बौरा गयीं आम की डालें
बौरी कोयल लगी कुहकने ।। 251

रघुकुल मणि का कुलदीपक था
सिया गर्भ में लगा पनपने
राम सिया के नयनों में भी
सजने लगे सुनहरे सपने ।। 252

मातायें सुख से अह्लादित
मन ही मन आशीषें देतीं ।
सीता मन में हुलसित पुलकित
आँचल में कल्पित सुख लेतीं ।। 253

पर अविगत गति मानव बन कर
लगी अवध में सुख से रहने ।
जग-जननी श्री सीता के प्रति
कलुसित वचन लगी वह कहने ।। 254

द्वितीय सर्ग – निष्कासन

जै जै भागीरथी सुनीरे
जै जै मकरवाहिनी गंगे ।
जै शिव शंकर शीश निवासिनी
जै जै सुमधुर अमिय तरंगे ।। 255

जै जै त्रिपथगामिनी गंगे
मेरी पूजा ग्रहण कीजिये ।
हे पुण्यमयी अपने तट पर
इस अबला को शरण दीजिये ।। 256

अपनी व्यथा कथा को लेकर
आई हूँ मैं शरण आपकी ।
शान्त कीजिये अमिय सलिल से
ज्वाला मेरे त्रिविध ताप की ।। 257

मेरे आँसू के जलनिधि से
निकले अमृत भक्तिभाव का ।
बने सबल पतवार सदा यह
भव में भटकी हुई नाव का ।। 258

मेरे अभिअन्तर में अम्बे
सगुण भक्ति संचार कीजिये ।
'करुणानिधि श्रीराम' काव्य के
लेखन को सुविचार दीजिये ।। 259

अपने मन के उदगारों को
आनन्द छन्द में बद्ध करूँ ।
आँसू को संगीत बना कर
अति सुमधुर ताल निबद्ध करूँ। ।। 260

मेरी व्यथा कथा को अम्बे
भक्ति भाव से भावित करियें ।
अपनी पावन लहरों से माँ
इस कृति को आप्लावित करिये ।। 261

अम्ब आपकी लहरों में ज्यों
पुण्य सलिल ही लहराता है ।
अवगाहन करने वालों का
पाप ताप भी बह जाता है ।। 262

ऐसे ही इस करुणानिधि में
अवगाहन करने जो आये ।
पाप ताप उसके तन मन का
इसकी लहरों में बह जाये ।। 263

मेरे अश्रु उमड़ कर अम्बे
चरण आपके छूने आये ।
लहरों में मिल जायें लहर तो
अम्बे 'नलिन' धन्य हो जाये ।। 264

गंगा मैया इस रचना को
मिले यही वरदान आपसे ।
मुक्त करें यह भक्त जनों को
भव सागर के त्रिविध ताप से ।। 265

(।)

राम राज्य हो गया अयोध्या
त्रिभुवन में सम्मान पा गई ।
किन्तु न जाने कहाँ छिपी थी
विपदा जो अनजान आ गई ।। 266

स्वयं राम ने प्रजा जनों में
ऐसा कहना सुनना पाया ।
" रावण के घर रही जानकी
क्या यह उचित उन्हें अपनाया ??' 267

उधर प्रजा थी इधर प्रिया थी
अंगीकार करें अब किसको ?
उभय ओर कर्त्तव्यबद्ध थे
अस्वीकार करें तब किसको ?? 268

मन्थन करता रहा हृदय में
ऐसा ही कुछ अन्तर्द्वन्द्व ।
फिर सीता का त्याग मात्र ही
कर पाया उनको निर्द्वन्द्व ।। 269

कालचक्र ने वक्र चाल से
अपना निष्ठुर कदम बढ़ाया ।
वनोवास फिर से सीता ने
अपने राजमहल से पाया ।। 270

नियति नटी का खेल कहें या
कहें दैव की निर्दय बातें ।
सूर्य वंश के प्रखर सूर्य को
मिलीं अंधेरी दुःखमय रातें ।। 271

(2)

ज्यों ही सुना सिया ने उनको
फिर से वन में जाना होगा ।
अग्नि परीक्षा की लपटों को
मन से सदा भुलाना होगा ।। 272

कटी डाल सा टूट गया मन
कुम्हला गई विकल सुकुमारी ।
नहीं समझ में आया कुछ भी
जड़ हो गई चेतना सारी ।। 273

क्या समझातीं सिया राम को
कैसे कितना कष्ट सहा था ?
सदा रहीं अनुकूल, न कुछ भी
कहीं राम से कभी कहा था ?? 274

चरणों में नित साथ रहीं तो
क्या मातृत्व नहीं उमड़ा था ?
कितनी कितनी बार हृदय में
ममता का बादल घुमड़ा था ?? 275

ममता का वह स्वप्न अकेला
अन्तर में चुपचाप रहा था ।
तेरह वर्ष साथ रह कर भी
एकाकी वैराग्य सहा था ।। 276

एक वर्ष लंका में बीता
प्रभु मूर्ति हृदय में बसी रही ।
श्वास निकल कर गई न तन से
प्रिय दर्शन लोलुप फँसी रही ।। 277

(3)

सहसा श्री राम ने आकर
वन गमन हेतु आदेश दिया ।
झुका शीश आशीष समझ कर
वैदेही ने प्रस्थान किया ।। 278

कहा भरत ने " करिये माता-
मेरी विनय आप स्वीकार ।
रघुकुल के इस राजमहल में
प्राप्त आपको भी अधिकार" ।। 279

किन्तु सिया ने अधर न खोले
रह गया मर्म सब अनबोला ।
स्वाभिमान सम्मुख आ जाता
जब कहीं तनिक भी मन डोला ।। 280

पिता जनक का राजमहल हो
या सिंहासन अवधपुरी का ।
ये तो केन्द्र न बन पाये थे
सिय के जीवन धर्म धुरी का ।। 281

निज सतीत्व के बल पर जिसने
दे डाली थी अग्नि परीक्षा।
निष्कासन से दे डर जाती
नहीं मिली थी ऐसी दीक्षा ।। 282

(4)

भाव भँवर में फँसी चेतना
ढूँढ रही थी सही किनारा ।
स्वयं अहं को समझाया, फिर-
जग जननी ने यही विचारा ।। 283

राघवेन्द्र का अंश गर्भ में
उसे जन्म देना ही होगा ।
मिथ्यारोपित जलधि भँवर से
निज सतीत्व खेना ही होगा ।। 284

रघुवर सन्तति जननी बन कर
नारी जीवन सफल करुँगी ।
रच कर नई सृष्टि के अंकुर
अपनी झोली आप भरुँगी ।। 285

सूर्य वंश का अंश यथा क्रम
जब मम गोदी में आयेगा ।
दूर कहीं कितने भी हों पर
हृदय पिता का हुलसायेगा ।। 286

जब श्री रघुवर पिता बनेंगे
ख्याति धरा अम्बर भर देगी ।
इसी प्रतीक्षा में अब सीता
निज जीवन-यापन कर लेगी ।। 287

पल में मोह त्याग महलों का
सिय ने स्वीकारा वनोवास ।
सूने कर गईं मिथिला कोशल
सूना कर गईं राम निवास ।। 288

भूमिसुता अब भूमिहीन हो
लक्ष्मण संग चलीं कानन को ।
विछुड़ रहे थे राम अचानक
होता था धैर्य नहीं मन को ।। 289

सोचा तो था जन्म जन्म तक
सिया राम का साथ रहेगा ।
इसी जन्म में बिछुड़ रहे फिर
यह दुःख मन असहाय सहेगा ।। 290

मिलती रहे राम की छाया
फिर मन में कुछ चाह नहीं थी ।
कितने भी संकट सम्मुख हों
सीता को परवाह नहीं थी ।। 291

छिन गई राम की छाया भी
आज विधाता वाम हो गया
सिय जीवन का आश्रय अब तो
मात्र राम का नाम हो गया ।। 292

दास दासियां महल सुहाने
अब सीता से छूट रहे थे ।
वर्षों बाद मिला था जो सुख
उसको दुर्दिन लूट रहे थे ।। 293

छूट रहे थे स्वर्ण झरोखे
छूट रहे थे मणिमय दर्पण ।
सरयू के तट छूट रहे थे
छूट रहे थे सुन्दर उपवन ।। 294

सभी स्वजन अब लगे बिछुड़ने
पल में सब कुछ हुआ पराया ।
हतप्रभ हुई जानकी सहसा
घोर विजन वन था नियराया ।। 295

(6)

गंगा के उस पार पहुँच कर
लक्ष्मण हाथ जोड़ कर बोले ।
" दो आशीष मुझे अब माता
प्रभु की प्रभुता पूरित हो ले" ।। 296

दहका ज्वालामुखी हृदय में
बरसे बादल किन्तु नयन से ।
भावोद्वेलित भरा कण्ठ था
सिया न कुछ कहसकीं लखन से ।। 297

उतर राम के रथ से नीचे
खड़ी हुईं सीता परित्यक्ता ।
सिर के ऊपर नील गगन था
चरणों के नीचे सरि-सिक्ता ।। 298

लौट गये लक्ष्मण रथ लेकर
हुई राम की आज्ञा पूरी ।
खड़ीं अकेली चिन्तित सीता
लिये आस अभिलाष अधूरी ।। 299

आगे पीछे कोई न अपना
चारों ओर भयंकर वन था ।
जग जननी माँ बनने वाली
भय से काँप रहा तन मन था ।। 300

(7)

रथ वायु वेग से लौट गया
सीता रह गईं खड़ी वन में ।
अपने भी हो गये पराये
उपजा वैराग्य तभी मन में ।। 301

सीता ने सोचा " गंगा की -
शीतल लहरों में सो जाऊँ ।
आज जगत सब मुझसे खोया
अब मैं इस जग से खो जाऊँ ।। 302

जिसमें अपना नहीं ठिकाना
उस जग में अब रहना क्या है ?
जिसने मुझको दोष लगाया
उस जग से कुछ कहना क्या है ??" 303

मन में ऐसा निश्चय करके
चलीं सिया गंगा की ओर ।
गहन विषाद भरा था उर में
टूटी थी आशा की डोर ।। 304

गंगा का अभिवादन करके
सीता ने पग धरे घार में ।
माँ को देख देव सरि उमड़ीं
लहर लहर को भरे प्यार में ।। 305

(8)

राम जानकी दोनों जग में
एक तत्व के दो स्वरूप हैं ।
उनके ही पद-नख से निकलीं
ये भागीरथी अनूप हैं ।। 306

सीता जी के चरण देख कर
गंगा ने माँ को पहिचाना ।
लिपट गयीं अह्लादित होकर
अपना परम भाग्य यह जाना ।। 307

भक्ति भाव से गंगा जी ने
जग जननी के चरण पखारे ।
धरतीतल बैकुण्ठ बन गया
धन्य धन्य सौभाग्य हमारे ।। 308

तत्क्षण प्रगट रूप में गंगा
सीता के सम्मुख आई थीं ।
विनय सहित तब बात हृदय की
माता को सभी बताई थी ।। 309

" माता यदि मेरी धारा में
निश्चय ही डूबेंगी आप ।
तो अनजाने दे डालेंगी
मुझको महा भयंकर शाप ।। 310

तब गंगा के माथे पर माँ
हत्या का अभियोग लगेगा ।
तब मेरे तट तीर्थ न होंगे
नही दान, जप, योग चलेगा ।। 311

हे अम्बे अपनी पुत्री को
मत ऐसे अभिशप्त कीजिये ।
दे कर निज ममता की छाया
माता मुझको तृप्त कीजिये ।।" 312

गंगा की बातों को सुन कर
सीता का मन हर्षाया था ।
उमड़ा था वात्सल्य हृदय में
ममता सागर लहराया था ।। 313

सीता के अन्तर में उमड़ी
ममता की उत्ताल तरंग ।
तब देह त्याग की अभिलाषा
बह गई उसी के साथ संग ।। 314

गंगा को भर लिया अंक में
सीता ने बाँहें फैला कर ।
पावन हो गयीं पतितपावनी
जग जननी की ममता पाकर ।। 315

कैसा अद्भुत दृश्य अम्बिके
निज दुहिता से मिल रहीं गले ।
पल भर को रुक गया समय भी
अतिस्नेह शिथिल पग नहीं चले ।। 316

अन्तर्ध्यान हुयीं फिर गंगा
लहर लहर में सिमट गयी थीं ।
आभार प्रदर्शित करने हित
सिय चरणों में लिपट गयी थीं ।। 317

सिय ने देखा कल कल करतीं
गंगा बस बहती जाती थीं ।
लहरों के मिस उठा हथेली
वर्जित भी करती जाती थीं ।। 318

" जल समाधि वरणीय नहीं है
माते आप अनर्थ न करिये।
इस दुर्लभ मानव जीवन को
आत्माहन बन व्यर्थ न करिये।।" 319

जीत लिया ममता ने मन को
लौट चलीं सीता अकुलातीं।
एकाकी अनभिज्ञ लक्ष्य से
सिक्ता में पद-चिह्न बनातीं।। 320

परित्याग की इस पीड़ा को
विवशा आज पीना ही होगा।
रघुकुल की भावी पीढ़ी हित
सीता को जीना ही होगा।। 321

(9)

जीवन के इस दुर्गम पथ पर
सीता रह गयीं अकेली थीं।
घनघोर विजन घर बना आज
अब केवल प्रकृति सहेली थीं।। 322

विष्णुप्रिया बन सिया जानकी
धरती तल पर विहर रही थीं।
अपनी ही माया के आगे
लीलावश अति सिहर रही थीं।। 323

भयवश नयन मूँद कर सीता
बैठ गयीं थीं सूने वन में ।
कितना अभी और क्या होना
सोच रही थीं अपने मन में ।। 324

तभी हृदय में ज्योति पुँज-सा
जागा जग जननी का ज्ञान ।
सीता को सन्ध्यावन्दन का
अनायास ही आया ध्यान ।। 325

त्वरित हृदय को समझाया, फिर
ध्यान योग में लीन हो गयीं ।
करुणामयी स्वयं ही अपनी
करुणा में लवलीन हो गयीं ।। 326

क्षण भंगुर है सब कुछ जग में
था स्वतः स्वयं को ज्ञान दिया ।
नमन किया गुरु चरणों में, फिर
त्रिपुटी में केन्द्रित ध्यान किया ।। 327

जाग्रत, स्वप्न, सुसुप्ति, तुरीया
तुर्यातीत ध्यान फिर आया ।
समाधिस्त हो गयीं जानकी
ब्रह्म - ज्ञान अन्तर में पाया ।। 328

विष्णु राम बन हुये अवतरित
तब सीता के ध्यान पटल में ।
कहा-" [illegible] रहूँगा साथ जानकी
मधुकर बन तव हृदय कमल में ।। 329

तुम मेरी लक्ष्मी हो सीता
तुम ही परा-शक्ति, मन, वाणी ।
उठो जानकी दीन बनो मत
तुम हो जगदम्बा कल्याणी ।। 330

स्वयं शक्ति ही इस धरती पर
अबला बन कर आ जाती है ।
जन्म नये अंकुर को देकर
गौरव जननी का पाती है ।। 331

नव निर्माण नयी पीढ़ी का
माता पर आश्रित होता है ।
मिले जिसे माता की ममता
वह नहीं निराश्रित होता है ।। 332

पितृहीन बालक भी, माँ का-
आँचल थाम मुदित होता है ।
शोक निशा को त्यागे माँ तब
हर्ष दिनेश उदित होता है ।। 333

हम तुम दोनों धर्म समझ कर
विरहानल को भी सह लेंगे ।
असहनीय होगी वह वाणी
जिसको शंकित जन कह लेंगे ।। 334

नव अंकुर निस्सीम काल तक
शंकाओं के बीच पलेंगे ।
लेकर कुण्ठा घुटन हृदय में
बोझिल जीवन राह चलेंगे ।। 335

जाने कब तक भावी पीढ़ी
कुत्सा से भयभीत रहेगी ।
शंकाओं की ओट न जाने
कितनी बातें प्रजा कहेगी ।। 336

सबके मन निर्मल करना ही
इस जीवन का 'अर्थ' हमारा ।
इसीलिये तब निष्कासन का
मुझको लेना पड़ा सहारा ।। 337

होता है रघुवंश कलंकित
दुविधा में मन आज पड़ा है ।
वैदेही तुम उचित दण्ड दो
अपराधी यह राम खड़ा है ।। 338

मेरा हृदय रहेगा प्रेयसि
हर सुख दुःख में साथ तुम्हारे ।"
मृदु वाणी सुन प्रिय की सिय ने
धीरज धर तब नयन उघारे ।। 339

भँग हुआ था संग ध्यान के
सुन्दर वह प्रतिबिम्ब राम का ।
वाणी विकल विहग सम आकुल
उड़ी सहारा लिये नाम का ।। 340

राम! राम!! हेराम!!! कहाँ तुम
मुझे अकेली छोड़ रहे हो?
कठिन परीक्षा में जीवन की
मुझसे नाता तोड़ रहे हो ??" 341

आर्तनाद सुन काँप उठा था
उस क्षण घोर विजन भी सारा ।
ठिठक गया था पवन वेग भी
सहम गयी गंगा की धारा ।। 342

सूर्यास्त का समय सहज ही
वन में लगा अंधेरा होने ।
विरहानल में झुलसी सीता
लगीं राम की सुधि में रोने ।। 343

सीता हँस कर सह लेतीं सब
यदि केवल विपदायें होतीं ।
किन्तु गर्भ में अंश राम का
यही सोच कर सीता रोतीं ।। 344

घोर विजन में सान्ध्य समय ही
अन्धकार का राज्य हो गया ।
सीता के जीवन का वन से
अब नाता अविभाज्य हो गया ।। 345

तृतीय खण्ड – काम

प्रथम सर्ग – अरण्य आनन्द

भक्तों के ताप मिटाने को
शिव जी लेते हैं अवतार।
आध्यात्म गुरु के रुप में
दर्शन देते हैं साकार ।। 346

शिष्य लोग तो स्वार्थ भाव से
जाते हैं गुरु जी के पास।
जैसे सब प्राणी जाते हैं
जल के पास बुझाने प्यास ।। 347

लेकिन गुरु जी सब शिष्यों को
ज्ञानामृत निस्वार्थ पिलाते।
जन्म मृत्यु से रहित मोक्ष का
परम धाम भी उन्हें दिलाते ।। 348

'गुरु देशपाण्डे जी' की शिष्या
सरोज श्रीवास्तव 'नलिन' नाम।
आध्यात्म गुरु के चरणों में
करती हूँ अर्पण कोटि प्रणाम ।। 349

शिष्या के वन्दन को गुरु जी
आप सहज स्वीकार कीजिये।
देकर अपना शुभ संरक्षण
भव - सागर से तार दीजिये ।। 350

गुरु के चरण कमल से सुरभित
जल का एक बिन्दु मिल जाये ।
तो भव - सागर बीच कीच में
निर्मल 'नलिन' पुष्प खिल जाये ।। 351

गुरु जी कृपा अनुग्रह द्वारा
शिष्या का उत्थान कीजिये ।
सतत प्रकाशित रहे विश्व में
कुछ ऐसा वरदान दीजिये ।। 352

(।)

चित्रकूट के पास जहाँ पर
गंगा में तमसा मिलती है ।
जहाँ बैठ कर स्वतः हृदय में
श्रद्धा की कलिका खिलती है ।। 353

उसी जगह द्वि- सरि - संगम पर
वाल्मीकि - आश्रम * पावन था ।
स्वर्ग सरिस था शान्त तपोवन
और दृश्य अति मन भावन था ।। 354

---

* गंगायास्तु परे पारे वाल्मीकेस्तु महात्मनः ।। 17 ।।
आश्रमों दिव्यसंकाशस्तमसातीरमाश्रितः ।
तत्रैतां विजने देशे विसृज्य रघुनन्दन ।। 18 ।।

गंगा के उस पार तमसा के तट पर महात्मा वाल्मीकि मुनि का दिव्य आश्रम है । रघुनन्दन (लक्ष्मण) उसी आश्रम के निकट निर्जन वन में तुम (सीता को) छोड़ आओ ।

(श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण
उत्तर काण्ड - पैंतालीसवां सर्ग)

अरुणिम सन्ध्या सिमट रही थी
पश्चिम के नीलाम्बर पट पर ।
वन कन्यायें लौट रही थीं
गंगा जल से अपना घट भर ।। 355

उसी समय करुणाविगलित स्वर
सिया कण्ठ से उड़ कर आया ।
जिसको सुनते ही सबका मन
भय आश्चर्य सहित घबराया ।। 356

करुणा क्रन्दन सुन सीता का
अति आतुर सब दौड़ पड़ी थीं ।
देख दिव्य सौन्दर्य सिया का
चकित सभी रह गयी खड़ी थीं ।। 357

सुन कर करुण विलाप सिया का
आश्रम से गुरुवर भी आये ।
विलख रही थीं जहाँ जानकी
ऋषिवर वहाँ त्वरित ही धाये ।। 358

वहाँ पहुँच कर वाल्मीकि ने
सीता को पहचान लिया था ।
सीता ने गुरु को पहचाना
पदरज ले सम्मान किया था ।। 359

दिव्य दृष्टि से तभी विप्र ने
स्वयं जान ली प्रभु की माया ।
सीता को मिल गयी सहज ही
सुरतरु जैसी गुरु की छाया ।। 360

वन कन्यायें साथ सिया को
ऋषि आश्रम तक ले आई थीं ।
क्षमा, अभय, अनुराग, प्रेम, सब
निधियाँ सीता ने पाई थीं ।। 361

गुरु करते यही प्रयत्न सदा
सिय नित्य तुष्ट सन्तुष्ट रहें ।
नित चित्त प्रसन्न रहे गुरु का
यह सोच सिया सब कष्ट सहें ।। 362

(2)

आदिवासियों की बस्ती में
अनादि शक्ति ने लिया बसेरा ।
वाल्मीकि की ज्ञान गिरा ने
सिय हिय में भर दिया उजेरा ।। 363

वन कन्यायें हमजोली थीं
सीता के सुकुमार क्षणों की ।
उनके संग बिसर जातीं सिय
सुधि अपने बिछुड़े स्वजनों की ।। 364

फिर भी हृदय न धीरज पाता
बार बार सुधि उसकी आती ।
निर्मोही हो गया अधिक जो
आये कभी न जिसकी पाती ।। 365

झिलमिल झिलमिल चमक रहे थे
अगणित तारे नील गगन में ।
विवश अकेली सोच रही थीं
वैदेही उस नीरव वन में ।। 366

हाय ! विधाता क्या लिख डाला
तूने जब लेखनी उठाई ?
विपदायें ही मिलीं भाग्य में
लेख लिखा इतना दुःखदायी ?? 367

हाय ! वेदना तन मन की अब
बढ़ती जाती बढ़ती जाती ।
किन्तु अभी तो जीना होगा
लौटानी प्रियतम की थाती ।। 368

आज अयोध्या में होतीं तो
नव उल्लास भरा मन होता ।
हर पीड़ा हँस कर सह लेतीं
दृढ़ विश्वास भरा मन होता ।। 369

(3)

आभासित आसन्न प्रसव क्षण
उर में अकुलाहट भरता था।
अन्धकारमय लगा भविष्यत
सन्नाटे में मन डरता था ।। 370

तभी पास में सोयी सखि ने
अनजाने में करवट बदली ।
बादल ओट निकल शशि आया
चमकी कोई किरण रुपहली ।। 371

सीता क्यों जागी बैठी हैं
उस सखि ने तब उठ कर देखा ।
सीता के अधरों ने खींची
सखि के श्रवणों तक स्वर रेखा ।। 372

अन्तर्हित करुणा में गर्भित
पीड़ा की सुखमय लगी बात ।
अटल अन्त जैसे रजनी का
सूर्योदय सुन्दरतम प्रभात ।। 373

सुनकर सुखद वचन सीता के
उठी सहेली भर उमंग में ।
सूचित करने चली सभी को
गाती कुछ कुछ मन तरंग में ।। 374

जंगल के पशु पक्षी जागे,
जागे आश्रम के नर नारी ।
हुयीं उपस्थित वृद्ध नारियाँ
भीड़ हुई कुटिया में भारी ।। 375

वन की हिरणी दौड़ी आई
डालों पर कलियाँ महक उठीं ।
तरु पत्रों ने वाद्यय बजाये
वृक्षों पर चिड़ियाँ चहक उठीं ।। 376

अस्ताचल पर जाकर ठिठकी
पूनम का चाँद लिये रजनी ।
उदयाचल पर विहँसी ऊषा
सूरज को गोद लिये अपनी ।। 377

रवि शशि को साथ निरख पलभर
क्षिति अम्बर मन में मुदित हुये ।
उसी समय ज्योतिर्मय सुन्दर
रघुवंश हंस - द्वै उदित हुये ।। 378

सिय ने गोद लिया शिशुओं को
कमल नयन में जल भर आया ।
सीता बिसर गयीं सुधि अपनी
रुप राम का उर में छाया ।। 379

(4)

अब तो सीता की गोदी में
शिशु बन कर आये थे राम ।
नाम करण जब किया गुरु ने
दिया उन्हें तब लव, कुश नाम ।। 380

जनक नन्दिनी का जीवन अब
जननी बन कर धन्य हो गया ।
परित्याग के कारण उपजा
उनका कष्ट नगण्य हो गया ।। 381

जब उनकी गोदी में हँसते
रघुकुल मणि के नन्हें फूल ।
तब तो अपनी हर पीड़ा को
सीता जी जाती थीं भूल ।। 382

कोमल कोमल पलक खोल कर
जब शिशु उन्हें निहारा करते ।
तब सीता के नयन द्रवित हो
उनकी नजर उतारा करते ।। 383

नन्हें लव कुश की किलकारी
लगती थी उनको संगीत ।
जीवन लगने लगा सुहाना
दुःख के दिन हो गये व्यतीत ।। 384

नन्हें हाथों से मुट्ठी में
जब शिशु उनकी वेणी कसते ।
तब तो सब सन्ताप भूल कर
अधर सिया के विवश विहँसते ।। 385

लिटा पालने में शिशुओं को
सीता जब लोरी गाती थीं ।
अपने बचपन की सुधियों में
अनजाने ही खो जाती थीं ।। 386

कैसा होता है यह बचपन
जाने क्यों आता है याद ।
जाने क्यों करने लगता है
अपने मन चाहे सम्वाद ।। 387

घुटनों घुटनों लगे खिसकने
लव कुश अब उत्पात मचाते ।
जहाँ कहीं भी जातीं सीता
वे पीछे पीछे आ जाते ।। 388

कुटिया के प्रांगण में लव कुश
करते थे नित शिशुवत खेल ।
इस सुख को पाकर सीता जी
लेती थीं हर दुःख को झेल ।। 389

(5)

घुटनों घुटनों चल कर बालक
पैरों के बल खड़े हो गये ।
समय बीतता गया और वे
धीरे धीरे बड़े हो गये ।। 390

लव कुश को निजशिष्य बना कर
गुरु जी ने विद्यारम्भ किया ।
सब शास्त्रों का विधिवत अध्ययन
सिय - पुत्रों ने प्रारम्भ किया ।। 391

अब लव कुश को नित्य नियम से
गुरु जी सब शिक्षा देते थे ।
समय समय पर उन दोनों की
कठिन परीक्षा भी लेते थे ।। 392

वेद पुराण सहित सब शास्त्र
लव कुश को कण्ठस्थ हो गये ।
शस्त्रास्त्र प्रयोगों में दोनों
अतिशीघ्र सिद्धहस्त हो गये ।। 393

दोनों बालक शूर वीर थे
छत्रिय योग्य सभी सद्‌गुण थे ।
गायन वादन आदि कला में
वे दोनों अति कुशल निपुण थे ।। 394

राम कथा आधार बना कर
वाल्मीकि रामायण लिखते ।
उसी काव्य को दोनों भाई
गुरु जी से नित विधिवत सिखते ।। 395

गुरु जी उनको नियम पूर्वक
राम कथा समझाया करते ।
लेकिन उनके पिता राम हैं
उनसे नहीं बताया करते ।। 396

राम जन्म से सिया त्याग तक
पूरी कथा बताते रहते ।
उनकी जननी ही सीता है
इसको सदा छिपाते रहते ।। 397

(6)

राम कथा गायन करने में
दोनों भाई सिद्ध हो गये ।
इसी कथा गायन के द्वारा
लव कुश विश्व प्रसिद्ध हो गये ।। 398

कभी सुनाते जब वे दोनों
माता को अपना संगीत ।
छिपा भेद खुलने के भय से
सीता हो जातीं भयभीत ।। 399

पुत्रों के अद्भुत प्रश्न कभी
सिय को अधिक अचम्भित करते ।
कभी विलोड़न करते उर में
कभी उन्हें रोमांचित करते ।। 400

कभी पूछते थे वे दोनों
" माँ तुमने देखी हैं सीता ?"
इसका उत्तर क्या देतीं सिय
चुप रह जाती थीं भयभीता ?? 401

कभी कभी वे पूछा करते
" माँ तुमने देखे हैं राम ?
यदि वे हमको मिल जायेंगे
तो होगा भीषण संग्राम ।।" 402

ऐसे प्रश्नों के उत्तर में
सीता हो जाती थीं मौन ।
या फिर हँस कर कह देती थीं
" मैं क्या जानूँ वे हैं कौन ??" 403

' कैसा होगा नगर अयोध्या
कैसा वह सिंहासन होगा ?
कैसे होंगे राजा राम
कैसा उनका आसन होगा ?? 404

चलो राम से चल कर पूँछें
सीता जी को क्यों छोड़ा था ?
जिनके लिये जनकपुर जाकर
शिव धनुष आपने तोड़ा था ?? 405

क्या तुमने देखी हैं माता
सीता और राम की जोड़ी ?
माँ तुम हमें बताओ तो कुछ
बातें उनकी थोड़ी थोड़ी ।।" 406

पुत्रों के ऐसे प्रश्नों से
सीता अति सहम सिहर जातीं ।
विरह हृदय झुलसाने लगता
पलकें पानी भर भर लातीं ।। 407

माँ के भीगे नयन देख कर
लव कुश तनिक सिहर जाते थे ।
लेकिन उनके बाल हृदय से
फिर भी प्रश्न उभर आते थे ।। 408

' क्या त्रुटि हमसे हुई बताओ
माँ तुम क्यों ऐसे रोती हो ?
हमें दण्ड दे लो हे माता
तुम क्यों भला दुःखी होती हो ??' 40०

'नहीं वत्स ये अश्रु नहीं हैं'
सीता ने उनको समझाया ।
'यह तो पड़ी किरकिरी आकर
जिसके कारण जल भर आया ।।' 410

ऐसा कह कर सीता उनको
लगा हृदय से करतीं प्यार ।
यही प्रेम उनका जीवन था
ये ही था सब सुख संसार ।। 411

कभी साथ लेकर पुत्रों को
सीता करतीं धनु संचालन ।
क्रीड़ावश करती थीं तब वे
पुत्रों की आज्ञा का पालन ।। 412

ऐसी क्रीड़ा लव कुश को भी
लगती थी अति सुखद नवीन ।
खेल खेल में दोनों भाई
धनु विद्या में हुये प्रवीण ।। 413

जो कुछ आता था सीता को
वह सब उन्हें सिखाया करतीं ।
सरल प्रकृति की अद्भुत सुषमा
उनको स्वयं दिखाया करतीं ।। 414

इसी तरह से हँसी खेल में
उनका जीवन बीत रहा था ।
लव कुश नहीं जानते थे कुछ
सीता ने जो कष्ट सहा था ।। 415

द्वितीय सर्ग – जीवन संग्राम

जै जै जै भवताप हारिणी
जै जै हे जगदम्बे काली ।
विपदाओं से भक्त जनों की
करिये माँ प्रति पल रखवाली ।। 416

रवि शशि तारा गण खोये थे
गहरे अन्धकार के पीछे ।
मन की आशायें रोती थीं
दबी निराशा तम के नीचे ।। 417

एकाकी लगता था जीवन
कहीं किसी का साथ नहीं था ।
आकर जरा सहारा देता
ऐसा कोई हाथ नहीं था ।। 418

डूब गया मेरा अन्तर्मन
गहन कलिमा के सागर में ।
नहीं समा पाते थे आँसू
नयनों की नन्हीं गागर में ।। 419

बैठ गयी मैं नयन मूँद कर
काली माता के ध्यान में ।
करिये आप सहाय अम्बिके
इस अबला के उत्थान में ।। 420

कौंध गयी बिजली सी सहसा
अन्तर्तम ज्योतिर्मान किया ।
दिव्य ज्योति अवतरित हुई थी
मुझको आत्मा का ज्ञान दिया ।। 421

उस आत्म शक्ति से ओत-प्रोत
मन मातृ चरण में लोट गया ।
वह अन्धकार तब पता नहीं
कब जाने किसकी ओट गया ।। 422

माता के चरणों में वन्दन
बारम्बार हृदय करता है ।
अब गहन निराशा दूर हुई
मन में विश्वास उभरता है ।। 423

हर अन्धकार से लड़ने को
माँ मुझे यही उपकरण मिले ।
नयनो को नित्य मिले दर्शन
तव चरणों में ही शरण मिले ।। 424

पद सरोज में आश्रय देकर
भक्तों का उत्थान कीजिये ।
'नलिन' विनय करती है माता
मंगलमय वरदान दीजिये ।। 425

(।)

वाल्मीकि आश्रम में जन्में
लव कुश अब हो गये किशोर ।
गुरु आज्ञा पालन करने हित
करते थे श्रम अधिक कठोर ।। 426

सब शास्त्रों का ज्ञान गुरु से
लव कुश ने विधिवत पाया था ।
तीव्र बुद्धि थी, अल्प आयु में
तेज अपरिमित ही छाया था ।। 427

एक दिवस माता वैदेही
सुमन वाटिका सींच रही थीं ।
छवि प्रतिबिम्बित हुई राम की
दृग में भर दृग मीच रही थीं ।। 428

कलरव करते युगल बन्धु तब
उनके आगे खड़े हो गये ।
सहसा लगा सिया को बालक
अब तो कितने बड़े हो गये ।। 429

अति प्रसन्न थे लव कुश मन में
अश्व पकड़ कर ले आये थे ।
मृदु सम्भाषण करते दोनों
माता से कहने आये थे ।। 430

माँ ने कहा - "सुवन मेरे यह
अश्वमेघ का ही घोड़ा है ।
किसी विश्व विजयी अभिलाषी
राजा ने इसको छोड़ा है ।। 431

युद्ध क्षेत्र में उस राजा से
जो भी वीर जीत जायेगा ।
इस घोड़े के साथ वही फिर
उसका सिंहासन पायेगा ।।" 432

तब तो माँ ! हम दोनों भाई
निश्चय ही इसको बाँधेंगे ।
शस्त्र ज्ञान जो मिला गुरु से
हम उसे आज ही साधेंगे ।। 433

माँ हम युद्ध क्षेत्र में जीतें
हमको यह आशीष दीजिये ।
चलिये माता गुरु जी से भी
मंगलमय आशीष लीजिये ।। 434

देखें कौन सामने आकर
अब हमसे लोहा लेता है ?
युद्ध हमारा जाति धर्म है
वही हमें शोभा देता है ।। 435

माता विजय जानिये निश्चित
सिंहासन अब अपना होगा ।
होंगे दूर सभी संकट अब
सत्य हमारा सपना होगा ।। 436

अब तो माँ वह सिंहासन भी
धन्य आपको पाकर होगा ।
यह पूरा भूमण्डल ही, माँ ।
तव चरणों का चाकर होगा ।। 437

सुख सन्तोष प्रजा में होगा
ममतामय शासन को पाकर ।
चरण वन्दना किया करेंगे
इन्द्रदेव धरती पर आकर ।।" 438

लव कुश की सुन बात, सिया के -
नयनों में कुछ जल भर आया ।
बीती बातों की सुधियों में
फिर से मन उस पल भरमाया ।। 439

पुत्र प्रेम की उठी तरंगें
रीते मन में ज्वार आ गया ।
सुख दुःख साथ साथ भरमाये
मन मानस में प्यार छा गया ।। 440

उभय पुत्र को लगा हृदय से
लगीं विहँसने सीता मन में ।
इसी बहाने अब श्री रघुवर
आयेंगे मेरे प्रांगण में ।। 441

(2)

सीता विस्मित दौड़ी आयीं
बाहर यह कैसा कोहराम ?
स्तब्ध देखती रहीं निमिष भर
रघुकुल का अनुपम संग्राम ।। 442

दृश्य अकल्पित देख द्वार पर
संज्ञाहीन हो गयीं सीता ।
लौट चेतना आई पल में
बही शब्द सुरसरी पुनीता ।। 443

" अरे अरे लव कुश धनु छोड़ो
वत्स पिता हैं यही तुम्हारे ।
यही राम राजा रघुवर हैं
ये ही जीवन प्राण हमारे ।।" 444

फेंक धनुष सादर लव कुश ने
किया पिता को दण्ड प्रणाम ।
लगा कि जैसे आज व्यथा की
कथा पा गयी पूर्ण विराम ।। 445

पुलकित प्रेम विवश रघुवर ने
पुत्रों को ले लिया गोद में।
सहसा मिलन हुआ अति दुर्लभ
अन्तर को भर दिया मोद में ।। 446

निज मन का आवेग थाम कर
फिर सीता की ओर निहारा ।
निश्छल, निर्मल, पावन सीता
जैसे क्षीण सुरसरी धारा ।। 447

(3)

सहते सहते विषम वेदना
मन निर्मल तन म्लान हुआ था ।
बस कर्त्तव्य हुआ अब पूरा
सीता को यह ज्ञान हुआ था ।। 448

दुःख के आँसू पीते पीते
सूख गयी थी सुख की आशा ।
रघुवर संग देख लव कुश को
तृप्त हुई थी हृदय पिपासा ।। 449

रघुवर की बाँहों में बँध कर
उभय पुत्र आनन्द मग्न थे ।
तभी हर्ष से हरित हो गये
सीता के जो भाव भग्न थे ।। 450

पद रज लेकर अपने पति की
सीता ने धरती को टेरा ।
" माँ वसुन्धरे ! मुझे बुला ले
करती हूँ आवाहन तेरा ।। 451

स्नेह सिक्त आँचल के नीचे
माता मुझको शीघ्र बुला ले ।
अपनी ममतामयी गोद में
हे माँ ! मुझको आज सुला ले ।। 452

भय है मुझको अब निष्कासन
आकर कहीं न फिर अपनाये ।
परमानन्द मिला है मुझको
प्रियतम मेरे द्वारे आये ।। 453

यह सुख फिर से छिना अगर तो
सह न सकूँगी माता अब मैं ।
और अधिक कुछ नहीं चाहिये
पा ही चुकी आज सुख सब मैं ।। 454

इसी हर्ष में डूबी डूबी
अब चिर निद्रा में सो जाऊँ ।
पिता पुत्र की सुछवि निरखती
तुझमें अम्ब लीन हो जाऊँ ।।" 455

(4)

जब प्रस्ताव सुना सीता का
धैर्य धरा उर का डोला था।
स्वागत करने हेतु सुता का
अपना हृदय - द्वार खोला था ।। 456

निमिष मात्र में घटित हो गयी
दुर्घटना राम इतिहास की ।
धरती फटी, समायी सीता,
त्याग इच्छा अवध निवास की ।। 457

सिया संगिनी को बाहों में
झपट राम ने भरना चाहा ।
अपने सुख दुःख की बातों को
वैदेही से कहना चाहा ।। 458

मिल न सका संस्पर्श मात्र भी
विधि ने था कुछ और विचारा ।
हाथों में आ गयी सिया की
केश राशि ही बनी सहारा ।। 459

(5)

भूमिसुता हो गयीं भूमिगत
लव कुश जड़वत खड़े रह गये ।
फेंक दिये थे धनुष बाण जो
वे धरती पर पड़े रह गये ।। 460

अभी अभी तो ज्ञात हुआ था
उनको मात पिता का नाम ।
उनकी जननी ही सीता हैं
और पिता हैं राजा राम ।। 461

क्षण भर भी इस सुख का अनुभव
उन्हें नहीं मिलने पाया था ।
माता और पिता के सुख का
सुमन नहीं खिलने पाया था ।। 462

कितना निर्मम क्रूर काल है
कैसा किया कुठाराघात ।
कोमल हृदय सरल ये बालक
कैसे झेलेंगे आघात ?? 463

समझ गये थे लव कुश मन में
क्यों उनकी जननी रोती थीं ।
उनके प्रश्नो को सुन सुन कर
क्यों अपने नयन भिगोती थीं ।। 464

सहसा लोट गये धरती पर
दोनों भाई लगे विलखनें ।
हाथों में ले केश सिया के
राम भद्र भी लगे सिसकने ।। 465

ऋषि पत्नी ने अति ममतावश
उठा लिया लव कुश को आकर ।
उन्हें हृदय से लगा लिया फिर
पोंछ दिये आँसू समझाकर ।। 466

(6)

अभी अभी संग्राम जहाँ था
वहाँ पूर्ण विश्रान्ति हो गयी ।
और तपोवन में सहसा ही
मरघट जैसी शान्ति हो गयी ।। 467

पशु पक्षी सब मौन हो गये
दृग से लगा बरसने नीर ।
उनको रोता हुआ देख कर
पीड़ा भी हो गयी अधीर ।। 468

तरु पल्लव सब स्तब्ध हो गये
कुम्हला गये सुमन चहुँ ओर ।
व्याप गया संताप असीमित
दसो दिशाओं में घनघोर ।। 469

झर झर निर्झर लगे बिलखने
सरितायें कर उठीं विलाप ।
गिरि के शिखर हुये नत मस्तक
घट गया सूर्य का प्रखर ताप ।। 470

व्यथा भार से नील गगन भी
झुकने लगा धरा की ओर ।
तेज अग्नि का शान्त हो गया
सागर की थम गयी हिलोर ।। 471

वेग पवन का शिथिल हो गया
और चाल भी लगी भटकने ।
जग का प्राण कहा जाता जो
प्राण उसी के लगे अटकने ।। 472

केवल धरा शान्त थी मन में
बोझ सभी का सहज उठाये ।
क्योंकि धरा ही निज दुहिता को
हृदय मध्य थी स्वतः बिठाये ।। 473

तृतीय सर्ग - आत्म क्रन्दन

जै जै गिरिजापति जै शंकर
जै त्रिलोकीनाथ महेश्वर ।
जै जै इष्टदेव रघुवर के
जै हे नीलकण्ठ रामेश्वर ।। 474

भक्ति भाव से जो भी प्राणी
द्वार आपके आ जाता है ।
मनवांछित वरदान प्राप्त कर
धन्य जीव वह हो जाता है ।। 475

आदिनाथ अब इस अबला की
विनय यही स्वीकार कीजिये ।
देकर अपनी भक्ति अलौकिक
भव सागर से तार दीजिये ।। 476

आशुतोष तव कृपा रुप में
आज 'नलिन' ऐसा वर पाये ।
सत्यम् शिवम् सुन्दरम् प्रभु जी
मेरी यह रचना हो जाये ।। 477

' करुणानिधि श्रीराम ' काव्य यह
करुणा सागर का सेतु बने ।
आत्म और परमात्म मिलन का
अति दिव्य अलौकिक हेतु बने ।। 478

(।)

हाथो में ले केश सिया के
" हा वैदेही !" कह कर राघव ।
सीते ! सीते ! लगे बुलाने
किन्तु दिशायें थीं सब नीरव ।। 479

क्रन्दन करता हृदय थाम कर
अति व्यथित राम रह गये मौन ।
प्रभु अन्तर की पीड़ा समझे
जगत में इतना ज्ञानी कौन ?? 480

जिनकी महिमा शेष, शारदा
वेद पुराण नहीं कह पाये ।
उनके मन की विरह वेदना
' नलिन ' मलिन मति कैसे गाये ।। 481

पावन करने हेतु लेखनी
फिर भी थोड़ा बहुत लिखा है ।
पाठक गण सब क्षमा करेंगे
यदि कुछ अनुचित कहीं लिखा है ।। 482

जग के दुःख जब सह न सकीतो
राम नाम में लीन हो गयी ।
राम नाम का आश्रय पाकर
व्यथा कथा रंगीन हो गयी ।। 483

(2)

अपने अन्तर्मन को रघुवर
अन्तर्पीड़ा लगे जताने ।
जो कुछ कहना था सीता से
वही स्वयं को लगे बताने ।। 484

" जन्म मिला था महलों में पर
रहा भटकता ही मैं वन वन ।
मिलने से पहले खो जाना
मेरा भी जीवन क्या जीवन !! 485

बाल्यकाल गुरु गृह में रह कर
विद्या अध्ययन में ही बीता ।
ऋषि आश्रम में यज्ञों की फिर
रक्षा मैं करता था सीता ।। 486

जनकपुरी के कुछ दिन प्रेयसि
कहने को मेरे अपने थे ।
क्योंकि प्रिये तब इन नयनों में
प्रणय प्रेरणामय सपने थे ।। 487

पुष्पवाटिका में, मिथिला की,
पहुँचा था मैं सुमन तोड़ने ।
अनजाने आ गयीं प्रिये तुम
अमर आत्म सम्बन्ध जोड़ने ।। 488

चितवन की मृदु खनक जानकी
जगा गयी यह राग हृदय में ।
भार्या रूप तुम्हें ही पाऊँ
मिले यही सुख भाग्य उदय में ।। 489

सोचा था मेरे महलों में
सदा यही स्वर झंकृत होगा ।
सीता सी गृहलक्ष्मी पाकर
मेरा भवन अलंकृत होगा ।। 490

किन्तु नहीं फिर इतने सुख से
मैंने वह ध्वनि सुन पायी थी ।
यद्यपि तुम अर्द्धांगिनी बन कर
मेरे जीवन में आई थीं ।। 491

पहले था संकोच बड़ों का
फिर मिला हमें वनवास प्रिये ।
वन में भी सुख से रह न सके
अपहरण तुम्हारा हुआ सिये ।। 492

(3)

जब कंचन मृग मार प्रिये मैं
पर्णकुटी में वापस आया ।
खुला द्वार था किन्तु न थीं तुम
बड़ी देर तक तुम्हें बुलाया ।। 493

फिर मैं लगा भटकने वन में
सीते ! सीते !! लगा बुलाने ।
प्रिये हुआ अपहरण तुम्हारा
यही बात अब लगी रुलाने ।। 494

कंचन मृग बन कर आया था
प्रिये हमारा ही दुर्भाग्य ।
सुख सामीप्य तुम्हारा छूटा
रुठ गया अपना सौभाग्य ।। 495

मुझको व्याकुल व्यथित देख कर
भाई लखन बहुत समझाते ।
मेरी व्यथा दूर करने को
बहु प्रकार से धैर्य बंधाते ।। 496

मैं विरही वैरागी बन कर
तुम्हे ढूँढ़ता रहता वन में ।
जब तक मिलीं नहीं तुम मुझको
तब तक आया धैर्य न मन में ।। 497

(4)

इसी तरह से वन वन फिरता
चल कर मैं किष्किन्धा आया ।
वहाँ मिले सुग्रीव मुझे तब
मैंने उनको मित्र बनाया ।। 498

मिले मुझे सुग्रीव यहीं पर
यहीं मिले थे प्रिय हनुमान ।
कपि को देख विभोर हुआ मैं
अति अद्भुत था उनका ज्ञान ।। 499

प्रिये तुम्हारे कुछ आभूषण
वे अपने पास सम्भाले थे ।
ऋष्यमूक पर्वत पर तुमने
इन्हें देखकर जो डाले थे ।। 500

वे आभूषण लगा हृदय से
सिय मैं करने लगा विलाप ।
मेरे चारों ओर घिरे हों
जैसे जग के तीनो ताप ।। 501

भाई लखन लगे समझाने
तब मुझको समयोचित बात ।
" चारों ओर भेजिये धावक
माता की सुधि लेने तात ।।" 502

(5)

सुग्रीव हितैषी बने तभी
अपनी सब सेना को लाये ।
और तुम्हारी सुधि लेने को
चारों ओर दूत भिजवाये ।। 503

जब हनुमान चले दक्षिण को
आया मुझे तभी यह ध्यान ।
मैं अपनी मणि-जटित मुद्रिका
प्रिया हेतु भेजूँ पहिचान ।। 504

पहले ही जब मिले जटायू
तब मुझको यह बता दिया था ।
" रावण ने हर लिया सिया को
मुझे उन्होंने जता दिया था ।। 505

ऋष्यमूक पर्वत पर मुझको
फिर कपीन्द्र ने यही बताया ।
दक्षिण दिशा गया है रावण
उसी ओर को यान उड़ाया ।।" 506

इसीलिए तो दक्षिण दिशि को
भेजे थे मैंने हनुमान ।
और उन्हीं के हाथों में ही
सौंपी थी अपनी पहिचान ।। 507

(6)

जब हनुमान लौट कर आये
मुझे तुम्हारा हाल बताया ।
जिस सागर पार प्रिये तुम थीं
वह सागर नयनों में छाया ।।

फिर सुग्रीव मित्र ने अपनी
उत्तम वानर सैन्य सजाई ।
जाम्बवान को आगे करके
रीछों की सेना भी आई ।। 509

नील और नल ने अति अद्‌भुत
सेतु बन्ध निर्माण किया था ।
रामेश्वर की पूजा करके
सेना ने प्रस्थान किया था ।। 510

सेतु बन्ध से निमिष मात्र में
सेना पार उतर कर आई ।
रामेश्वर की जै ध्वनि करके
लंका पर हो गयी चढ़ाई ।। 511

खल रावण को मार प्रिये मैं
तुमको पुनः अयोध्या लाया ।
किन्तु न मेरे भाग्य-चक्र को
मेरा यह सुख किंचित भाया ।। 512

राज-धर्म से हुआ विवश मैं
तुमको निष्कासन दे डाला ।
अपने ही हाथों से प्रेयसि
मैंने पिया गरल का प्याला ।। 513

(7)

मेरे दु:ख में पूज्य पिता श्री
स्वर्ग धाम को चले गये थे ।
और अवध के लोग दैव वश
अनजाने में छले गये थे ।। 514

मातायें वैधव्य दाह में
निशि-दिन ही दहती रहती थीं ।
'करिये कुशल सभी पुत्रों की'
ईश्वर से कहती रहती थीं ।। 515

मूक रुदन में डूबी रहतीं
कैकेयी निष्प्राण हुई सी ।
अपलक पन्थ निहारा करतीं
कौसल्या पाषाण हुई सी ।। 516

कर्मयोगिनी बनी सुमित्रा
लगती थीं सचल अहल्या सी ।
करतीं सेवा निष्काम भाव
वे कैकेयी कौसल्या की ।। 517

उर्मिला, श्रुतिकीर्ति, माण्डवी
माताओं की सेवा करतीं ।
अपनी व्यथा छिपाये उर में
सभी जनों की पीड़ा हरतीं ।। 518

अवधि जलधि से नैया खेकर
पार उतरने को श्रम करतीं ।
विरह अग्नि से ऊर्जा लेकर
निज श्वासों में स्पन्दन भरतीं ।। 519

माताओं की सेवा में नित
रिपुदमन महल में रहते थे ।
क्रन्दन, व्यथा, विलाप सभी का
एकाकी हतप्रभ सहते थे ।। 520

समझाते पुरजन परिजन को
माताओं को धैर्य बंधाते ।
मेरी सुधि में बेसुध होकर
चुप - चुप रोये नहीं अघाते ।। 521

भाई भरत बने सन्यासी
राम नाम जपते रहते थे ।
नन्दिग्राम में कुटी बनाकर
दूर अयोध्या से रहते थे ।। 522

चरण पादुका लेकर मेरी
सादर अपने सम्मुख धर के ।
राज - काज करते रहते थे
बिम्ब हृदय में मेरा भर के ।। 523

लक्ष्मण मेरी छाया बन कर
चौदह वर्ष रहे वनवासी ।
इतने दिन तक मिली प्रजा को
विरह वेदना और उदासी ।। 524

अंकुरित हुई थी जो पीढ़ी
उसको दिशा न कोई देता ।
हर कोई तो अपने मन में
गहरे भय विषाद भर लेता ।। 525

चौदह वर्ष बहुत होते हैं
बनने और बिगड़ जाने को ।
सुदृढ़ शासन रहित प्रजा के
मन से प्रेम उखड़ जाने को ।। 526

(8)

सब आस लगाये बैठे थे
कल उनको युवराज मिलेगा ।
कौन जानता था वर्षों तक
उनको गहन विषाद मिलेगा ।। 527

प्रजाजनों के अवचेतन पर
दुर्घटना का पड़ा प्रभाव !
शंकातुर हो गयी भावना
सही सोच का हुआ अभाव ।। 528

सुनो जानकी शंकाओं का
वातावरण यहाँ फैला था ।
हर कार्य नियन्त्रित था लेकिन
कुछ हृदय प्रजा का मैला था ।। 529

ऐसे में गर्भस्थ अंश पर
संस्कार कलुषित पड़ जाते ।
सम्भव था कुछ अन्य भाव के
ज्ञान कोष दूषित गढ़ जाते ।। 530

अंजाने षड़यन्त्रों का जाल
कोई अविवेकी लहराता ।
राम राज्य का स्वप्न सिया फिर
उसी लहर के संग बह जाता ।। 531

प्रजातंत्र रक्षा के हित में
बात प्रजा की भी सुननी थी ।
और साथ ही सिये तुम्हारी
रक्षा मुझको ही करनी थी ।। 532

राजा को अपने जीवन से
इतिहास बनाना होता है ।
प्रजाजनों के मन में उसको
विश्वास जगाना होता है ।। 533

अनुशासन करने से पहले
अनुशासित होना पड़ता है ।
तभी प्रजा के अन्तर्मन पर
उसका कुछ प्रभाव पड़ता है ।। 534

अतः तुम्हें लक्ष्मण के साथ
ऋषि आश्रम तक पहुँचाया था ।
मुनिवर वहाँ सहारा देंगे
मन में विश्वास समाया था ।। 535

तुमको नहीं बताया प्रेयसि
गोपनीय यह बात बड़ी थी ।
मुझको था अनुशासित करना
प्रजा कि जो किंचित बिगड़ी थी ।। 536

(9)

कथित व्यक्ति को दण्ड कठोर
राजाज्ञा से दे सकता था ।
अपना भी दाम्पत्य जानकी
भव्य राजसी हो सकता था ।। 537

किन्तु तुम्हारे चिर सतीत्व की
रक्षा इससे कभी न होती ।
हर युग में होते कुछ प्राणी
कुत्सा जिनका हृदय संजोती ।। 538

किसको किसको दण्ड कहाँ तक
कौन सदा ही दे सकता था ?
और किसी भी युग में कोई
यह कलंक फिर दे सकता था ।। 539

तुमको निष्कासन ही देता
मैं इसके प्रति बाध्य नहीं था ।
रहो सदा अकलंकित प्रेयसि
इसका केवल साध्य यही था ।। 540

मुझको था विश्वास, वंश का-
अंश प्रखर दिनकर ही होगा ।
किसी दिशा में सूर्य उदय हो
उसका तेज प्रखरतर होगा ।। 541

प्रिये तुम्हें निष्कासन देकर
मैं भी तो हो गया अकेला ।
लिये तुम्हारी मधुमय स्मृति
मैंने हर कटु अनुभव झेला ।। 542

(10)

कभी कभी आखेट हेतु मैं
घोर विजन में ही जाता था ।
पीछे छोड़ साथियों को मैं
अपना घोड़ा भटकाता था ।। 543

फिर बाँध अश्व को दूर कहीं
मैं आश्रम तक आ जाता था ।
लता ओट से प्रिया पुत्र के
दर्शन भी मैं पा जाता था ।। 544

जनक नन्दिनी तुम लव कुश को
सभी कलायें सिखलाती थीं ।
पुत्र प्रेम यह देख तुम्हारा
मेरी आंखे भर आती थीं ।। 545

जब देखा पुत्र किशोर हुये
उमड़ा उर में आवेश सिया ।
अनुष्ठान हो अश्वमेध का
तब मैंने यह आदेश दिया ।। 546

मुझको था विश्वास कि लव कुश
अवश्य अश्व को पकड़ेंगे ।
और युद्ध में निज शस्त्रों से
वे प्रतिद्वन्द्वी को जकड़ेंगे ।। 547

लव कुश मेरे वीर पुत्र हैं
स्वतः विश्व को ज्ञान मिलेगा ।
गंगा सम पावन सीता को
पुनः उचित सम्मान मिलेगा ।। 548

वान्यप्रस्थ का समय आ गया
विश्व विजय से क्या पाना था ?
रुप सत्य का दिखा विश्व को
बस तुमको वापस लाना था ।। 549

तुम्हें पुनः घर ले आने का
यही पन्थ मुझको भाया था ।
अति शीघ्र यज्ञ आरम्भ करुँ
मन में यह भाव समाया था ।। 550

(11)

कहा सभी ने - " बिना संगिनी
यज्ञ प्रपूर्ण नहीं होता है ।
पत्नी उसका सिंचन करती
पुण्य बीज जो पति बोता है ।। 551

कर लें पुनर्विवाह राम जी
पट्ट - महिषी उन्हें बनायें
वाम भाग में शोभित हों वे
तभी यज्ञ आरम्भ करायें ।।" 552

कितनी सुर, गन्धर्व, नाग, नर,
किन्नर कन्यायें मिल जातीं ।
बन जातीं फिर राम वधू भी
किन्तु सिया कैसे बन पातीं ?? 553

अपना हृदय तुम्हें दे डाला
अब मैं उसे कहाँ से लाता ।
अपने हृदय रहित तन की मैं
जीवन संगिनि किसे बनाता ।। 554

कर लेता मैं पुनर्विवाह
यह कैसे सम्भव होना था ।
यह तो अपने ही हाथों से
प्राणों को असमय खोना था ।। 555

मैंने कहा सभी जन्मों में
मेरी पत्नी केवल सीता ।
मन मन्दिर में सिया विराजी
वह मन्दिर कभी नहीं रीता ।। 556

भला यज्ञ अब बिना संगिनी
कैसे आरम्भ किया जाये ?
रहा विचारों में उलझा मन
कौन मार्ग अपनाया जाये ?? 557

कहा गुरु ने - " स्वर्णकार से
सोने की सीता बनवाओ ।
यज्ञ हेतु फिर उन्हीं सिया को
वाम भाग में तुम बिठलाओ" ।। 558

जड़वत था सामीप्य किन्तु मन
इससे शान्त हुआ थोड़ा था ।
अनुष्ठान कर अश्वमेध का
छोड़ा चुना हुआ घोड़ा था ।। 559

(12)

लिये अवध की कीर्ति पताका
अश्व अबाध बढ़ा जाता था ।
हर राजा अपनी सीमा पर
उसको भेंट चढ़ा जाता था ।। 560

दो किशोर वनवासी बालक
उसी अश्व को पकड़ ले गये ।
धनुहीं उठा, चुनौती रण की,
बड़े गर्व से अकड़ दे गये ।। 561

लक्ष्मण, भरत और रिपुसूदन
हार गये थे उन वीरों से ।
अस्त्र अमोघ हुये थे खण्डित
लव कुश के नन्हें तीरों से ।। 562

हार गये सब बीर अवध के
अति अचरज था सारे जग को ।
धर्म यही था युद्ध भूमि में
रखना पड़ा स्वयं ही पग को ।। 563

युद्ध हेतु जब पिता पुत्र की
असि आपस में खटक रही थी ।
भयभीत हुआ ब्रह्माण्ड तभी
श्वास विश्व की अटक रही थी ।। 564

आकर उसी समय सिय तुमने
भेद विजय का खोल दिया था ।
कह न सका था जो अब तक मैं
निर्भय तुमने बोल दिया था ।। 565

लव कुश से सुत देकर मुझको
वैदेही तुम अब चली गयीं ।
जब जब पहुँची चरम विन्दु पर
मेरी खुशियाँ सब छली गयीं ।। 566

कैसी यह विडम्बना विधि की
सुख कभी समय पर दिया नहीं ।
मैं था सिय थीं पुत्र नहीं थे
अब मैं हूँ, सुत हैं, सिया नहीं ।। 567

शक्ति बिना तो शिव भी शव हैं
सिया रहित फिर कैसा राम ?
जहाँ नहीं तुम रहीं जानकी
वहाँ रहा क्या मेरा ' **काम** ' ?? 568

जग में सदा लिया जायेगा
मुझसे प्रथम सिया का नाम ।
जब जो मुझको याद करेगा
बोलेगा वह सीताराम ।।" 569

चतुर्थ खण्ड - मोक्ष
प्रथम सर्ग - दिव्य दर्शन

धूल धूसरित प्रभु चरणों में
यह मन मधुकर करे प्रणाम ।
आर्त वचन सुन कर भक्तों के
आ जाते हैं सीताराम ।। 570

करुणानिधि श्री राम नित्य ही
धरती पर विचरण करते हैं ।
स्वयं पहुँच कर भक्तों के घर
सब सन्ताप हरण करते हैं ।। 571

अचल शिला हो गयीं अहल्या
प्रभु को सदा पुकारा करतीं ।
मन में दृढ़ विश्वास लिये वह
अपलक पन्थ निहारा करतीं ।। 572

करुण पुकार सुनी जब उसकी
करुणालय करुणाकर आये ।
फिर चेतन हो गयी अहल्या
प्रभु ने उसके कष्ट मिटाये ।। 573

कुटिया में आयेंगे राम
मन में अविचल लगन लगाये ।
वन प्रान्तर में रहती शबरी
आशा की नित ज्योति जगाये ।। 574

शबरी की कुटिया में जाकर
प्रभु जूठे बेर सराह रहे ।
यह रूप राम का मिल जाये
तो शेष न कोई चाह रहे ।। 575

करुणानिधि श्री राम विनय है
अभिनन्दन स्वीकार कीजिये ।
स्वयं 'नलिन' के द्वारे आकर
अबला का उद्धार कीजिये ।। 576

(।)

नत मुख राम धरा पर बैठे
केश सिया के हृदय लगाये ।
उनके मन पर बीत रही क्या
समझे कौन किसे समझाये ।। 577

अन्तर्यामी झेल रहे थे
अपने अभिअन्तर की पीड़ा ।
वाग्मिता भी मूक हुई तब
देख रही थी प्रभु की क्रीड़ा ।। 578

" दैव! दैव! बस दैव प्रबल है!"
राम भद्र फिर बोल उठे थे ।
"लव कुश हुये विजेता" कह कर
भेद हृदय का खोल उठे थे ।। 579

" करता हूँ अभिषेक सुतों का *
वही प्रजा के शासक होंगे ।
सीता सुत ही सीता जी के
गौरव दीप प्रकाशक होंगे ।। 580

मैं भेद यहाँ अपने मन का
तुम सबके सम्मुख कहता हूँ ।
सीता सहित जपे जो मुझको
उसके उर में नित रहता हूँ ।। 581

बन कर कुशा केश सीता के
इस धरती पर अमर रहेंगे ।
नित पूजा, तर्पण, अर्पण का
अपने ऊपर भार वहेंगे ।। 582

---

* सीतायाश्च ततः पुत्रावभिषेक्ष्यति राघवः ।
अन्यत्र न त्वयोध्यायां मुनेस्तु वचनं यथा ।। 27 ।।

जैसा (दुर्वासा) मुनि का वचन है, उसके अनुसार श्री रघुनाथ जी सीता के दोनों पुत्रों का अयोध्या से बाहर अभिषेक करेंगे, अयोध्या में नहीं ।

(श्री मद्वाल्मीकीय रामायण
उत्तर काण्ड
इक्यावनवाँ सर्ग - 51
सत्ताइसवाँ श्लोक - 27

मुझसे अधिक जानकी जी की
जानी जायेगी अब महिमा ।
यदि मैं हूँ इस जग का गौरव
तो सीता हैं गौरव गरिमा ।। 583

निज इच्छा निमित तन मेरा
मैंने नर अवतार लिया है ।
जो आदर्श इष्ट थे मुझको
उन पर चल कर स्वयं जिया है ।। 584

नहीं सहे इसलिये कि मुझको
केवल दुःख ही दुःख सहना है ।
बल्कि सहे इसलिये कि मुझको
सह सह कर ही कुछ कहना है ।। 585

कहना है दुःख हँस कर झेलो
बाधाओं से हार न मानो ।
चलो सत्य को लक्ष्य बना कर
कर्त्तव्यों को भार न जानो ।। 586

(2)

सदा एक पत्नी ब्रत को ही
जीवन में आदर्श बनाओ ।
केवल निज पत्नी की प्रतिमा
मन मन्दिर में अटल सजाओ ।। 587

इतना आदर दो पत्नी को
वह तुमसे ऊँची हो जाये ।
उसे कलंकित करने वाला
अपने कर्मों को पछताये ।। 588

करो न यह अभिमान हृदय में
नर ही नारी का पालक है ।
बल्कि वही नर की जननी है
हर पुरुष उसी का बालक है ।। 589

देखो सीता ने लव कुश को
वन प्रदेश में बड़ा किया था ।
किन्तु अवध की सैन्य शक्ति के
सम्मुख निर्भय खड़ा किया था ।। 590

लव कुश के पालन पोषण में
मेरा कुछ सहयोग नहीं था ।
और उन्हें अति योग्य बनाना
मात्र सहज संयोग नहीं था ।। 591

सीता इनको जन्म न देतीं
तो मैं निरवंशी हो जाता ।
अतः कहो मत नारी अबला
कहो उसे जग जननी माता ।। 592

(3)

एक मर्म यह और तुम्हें अब
सत्य सनातन समझाता हूँ ।
दीन दुखी के लिये सदा मैं
इस धरती पर आ जाता हूँ ।। 593

' एकोऽहं बहुस्यामि ' का, जब-
मेरे मन में उठा विचार ।
बस केवल संकल्प मात्र से
निर्मित हुआ सकल संसार ।। 594

यह सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड
मेरा ही संकल्प मात्र है ।
मिल जाता यह ज्ञान जिसे वह
मुझसे मिलने को सुपात्र है ।। 595

इस जग के सारे सुख दुःख को
मैं ही स्वयं सहा करता हूँ ।
मैं ही तो जीवात्मा बन कर
सभी प्राणियों में रहता हूँ ।। 596

तुम मुझमें हो मैं तुममें हूँ
भेद कहाँ कोई रह जाता ।
पर इतनी छोटी सी बात
नहीं सदा सबसे कह पाता ।। 597

जो नित अपने अभिअन्तर में
मुझसे बात किया करते हैं ।
और सदा अपने सुख दुःख को
मेरे साथ जिया करते हैं ।। 598

उनके लिये स्वयं बन जाता
मैं चिर परिचित सखा स्वरुप ।
और प्रेम वश कर लेता हूँ
उन सब लोगों को मद्‌रुप ।। 599

सृष्टि न हो तो महाशून्य बन
केवल मैं एकाकी बचता ।
सखा मिले मुझको बहुतेरे
इसीलिये मैं जग को रचता ।। 600

मैं भी बातें करुँ किसी से
इसीलिये संसार बनाया ।
अपने ही दो रुप बनाये
और स्वयं ही द्वैत कहाया ।। 601

(4)

जब मैं भाव शून्य होता हूँ
हो जाती तब महा प्रलय है ।
मेरे सारे संकल्पों का
होता मुझमें पूर्ण विलय है ।। 602

बार बार एकाकी होता
बारम्बार सृजन करता हूँ ।
कभी कभी अपनी माया से
मानव रुप ग्रहण करता हूँ ।। 603

मेरा वही रुप इस जग में
कहलाता मानव अवतार ।
उसका ही अनुगामी होकर
यह जग करता है व्यवहार ।। 604

भिन्न भिन्न कल्पों में मैं ही
रुप विभिन्न ग्रहण करता हूँ ।
और उसी युग के अनुसार
लीला स्वयं वरण करता हूँ ।। 605

जैसे किसी जलधि की लहरें
कोई कभी नहीं गिन सकता ।
वैसे ही मेरे रुपों का
वर्णन कोई नहीं कर सकता ।। 606

अलग अलग रुपों में मुझको
मिलता अलग अलग ही नाम ।
कभी कृष्ण कहता जग मुझको
कभी कहा जाता हूँ राम ।। 607

ये चर अचर रुप सब जग के
मेरे ही अनुगत अनुचर हैं ।
मेरे संकल्पो के साथी
ये सब ही मेरे सहचर है ।। 608

अपरा परा प्रकृति हूँ मैं ही
मैं ही परम पुरुष परमात्मा ।
मैं जल, अनल,वायु, क्षिति,नभ हूँ
मैं ही देह और जीवात्मा ।। 609

मैं ही यहाँ वहाँ सब जग में
रहता हूँ अद्वैत भाव से ।
परिचित हैं ज्ञानी जन जग के
मेरे इस अद्‌भुत स्वभाव से ।। 610

(5)

मैं ही अव्यय अविनाशी हूँ
मैं ही निर्गुण निराकार हूँ ।
रुप रंग रस भाव रहित हूँ
कर्म रहित हूँ निर्विकार हूँ ।। 611

यह मेरा ऐश्वर्य योग है
लेता हूँ इच्छित अवतार ।
वह स्वरुप जाना जाता है
मेरा सगुण रूप साकार ।। 612

जैसे जल से हिम बनता है
वैसे ही जग मुझसे बनता ।
जैसे हिम में जल रहता है
वैसे ही मैं जग में रहता ।। 613

अगुण, सगुण में भेद नहीं है
दोनों हैं मेरे ही रुप ।
जिसमें जिसकी श्रद्धा उपजे
भजा करे वह वही स्वरुप ।। 614

(6)

मैं ही परम पिता परमेश्वर
हर सम्प्रदाय का स्वामीं हूँ ।
मैं ही सबका सृजक सुपालक
जन मन का अन्तर्यामी हूँ ।। 615

सत्य न होता यह तो बनतीं
धरती पर बहुतेरी माँद ।
अलग अलग फिर सूरज होते
अलग अलग हो जाते चाँद ।। 616

इसका सूरज उसके घर में
अपनी किरण नहीं पहुँचाता ।
उसका चाँद न इसके घर में
कभी चाँदनी अपनी लाता ।। 617

सूरज चाँद माँद में होते
तब कैसा नभमण्डल होता ?
कैसी होती नभगंगा तब
कैसा तब भूमण्डल होता ?? 618

सरिता, सागर, वन, पर्वत का
तब हो जाता कैसा हाल ?
तुम सब अपने अभिअन्तर में
धैर्य सहित यह करो सवाल ?? 619

(7)

ये संकाय निकाय अनेकों
ब्रह्माण्डों के घूम रहे हैं ।
अपनी सीमा में रह कर भी
विस्तारों को चूम रहे हैं ।। 620

एक दूसरे का आकर्षण
इन सब को खींचे रहता है ।
भिन्न प्रकृति के होने पर भी
प्रेम भाव भींचे रहता है ।। 621

इसी तरह से तुम भी अपने
निज जाति धर्म पर सधे रहो ।
लेकिन आपस में सब लोग
अति प्रेम भाव से बंधे रहो ।। 622

मिटो मिटाओ नहीं मोह वश
करने को सारा जग एक ।
रहो अभिन्न भिन्नता में ही
जैसे ये ब्रह्माण्ड अनेक ।। 623

(8)

केवल एक सूर्य ही जैसे
देता है तुम सबको धूप ।
इसी तरह से परमेश्वर का
होता है बस एक स्वरुप ।। 624

मुझ तक आने को धर्मों की
बनी हुई हैं राह अनेक ।
किन्तु असम्भव सब पर चलना
अतः मार्ग अपनाओ एक ।। 625

किसी धर्म की राह चलो तुम
कोई सा भी साधन साधो ।
सम्प्रदाय के लघु घेरे में
मेरा विश्वरूप मत बाँधो ।। 626

बार बार निज धर्म बदल कर
अन्य किसे कर लोगे प्राप्त ?
आदि अन्त से रहित निरन्तर
मैं ही हूँ कण कण में व्याप्त ।। 627

सब जग में रहता हूँ फिर भी
जन्मभूमि लगती अति प्यारी ।
सरयू तीर अयोध्या नगरी
त्रिभुवन में सर्वोत्तम न्यारी ।। 628

(9)

ऊँचे नीचे जाति वर्ग का
भेद न करना अपने मन में ।
सदा समान भाव से मैं ही
रहता हूँ तुम सबके तन में ।। 629

हर प्राणी हरि का स्वरुप है
नहीं किसी से करना द्वेष ।
अपने कर्त्तव्यों का पालन -
करना ही है धर्म विशेष ।। 630

लेकर नाम धर्म का तुम क्यों
आपस में लड़ते मरते हो ?
मैं अविनाशी अखिलेश्वर हूँ
कैसे मुझे बाँट सकते हो ?? 631

विविध जन्म लेता हूँ फिर भी
सबको प्रेम सदा सम करता ।
इसी तरह तुम भी सम देखो
मैं जो रुप अनेकों धरता ।। 632

(10)

मन में कोई इच्छा लेकर
जब चाहो मुझे सकाम भजो ।
या मन से काम विजित होकर
तुम मुझे नित्य निष्काम भजो ।। 633

उमापति भजो, रमापति भजो
राधा रमण घनश्याम भजो ।
जो रुप लगे रमणीय तुम्हें
तुम उसी रुप का नाम भजो ।। 634

मेरे सभी भक्त प्रिय मुझको
इसलिये मुझे अविराम भजो ।
सभी रुप मेरे अपने हैं
निज इष्टदेव सुखधाम भजो ।। 635

जो भी मुझको भक्तिभाव से
नित्य निरन्तर ही भजता है ।
चित्त भ्रमित कर देने वाले
संशय को मन से तजता है ।। 636

इस जग में फिर उन भक्तों की
पुनरावृत्ति नहीं होती है ।
जन्म मरण के बन्धन वाली
फिर आवृत्ति नहीं होती है ।। 637

' **मोक्ष** ' प्राप्त होता है उनको
मिलता है उत्तम परम धाम ।"
शिव सुन्दर सत्य वचन कहकर
मौन हो गये राजा राम ।। 638

(।।)

लक्ष्मण, भरत, शत्रुहन, लव,कुश
थे नमित शीष करबद्ध मौन ।
मौन खड़ी थी सेना सारी
रुँधे कण्ठ क्या बोले कौन ?? 639

तभी चतुर्भुज विष्णु रुप में
राम वहाँ पर प्रगट हो गये ।
वाम भाग में शोभित लक्ष्मी
सिया राम सन्निकट हो गये ।। 640

तेज पुँज की प्रखर रश्मियाँ
झर-झर, झर-झर, झर झरती थीं ।
कोटि सूर्य सम उज्जवल आभा
जग में ज्योति प्रखर भरती थीं ।। 641

श्रद्धानत होकर सबने तब
निज प्रभु का गुणगान किया था ।
सौम्य विहँस कर सिया राम ने
सबका प्रिय सम्मान किया था ।। 642

विमल भक्ति मिल गयी सभी को
भयाक्रान्त मन लगे हरषने ।
दिग दिगन्त गूँजे जय जय हे
सुमन गगन से लगे बरसने ।। 643

परमानन्द मगन नर नारी
भूल गये सुख दुःख का ज्ञान ।
सबको दे आशीष अलौकिक
फिर हो गये प्रभु अन्तर्धान ।। 644

द्वितीय सर्ग - आत्म निवेदन

जय श्री सीतानाथ आपके
चरणों में नित करूँ प्रणाम ।
मेरे अभिअन्तर में बसिये
सीता सहित सियापति राम ।। 645

हे नाथ आपकी सेवा में
उद्‌गार हृदय के खोले हैं ।
किन्तु निमित्त बना कर मुझको
सब कुछ स्वयं आप बोले हैं ।। 646

करिये दया दयानिधि मुझ पर
और यही वरदान दीजिये ।
आप कृपा कर मानव मन से
दूर सभी अज्ञान कीजिये ।। 647

विमल भक्ति में लीन रहे प्रभु
अखिल विश्व निष्काम भाव से ।
तर जायें भव सागर को सब
सिया राम की नाम नाव से ।। 648

नाथ आपसे यही विनय है
यह सम्भाषण नित बना रहे ।
जोकुछ लिखे 'नलिन' उस कृति में
प्रभु भक्ति भाव अति घना रहे ।। 649

(।)

सियाराम से मिली प्रेरणा
उनसे ही अनुभूति मिली है ।
और उन्हीं की अनुकम्पा से
भावों को अभिव्यक्ति मिली है ।। 650

सत्गुरु के आशीष प्राप्त कर
रचना में रच गया भक्ति रस ।
अटपट वाणी कविता बन गयी
सब द्वन्द्व बन गये छन्द सरस ।। 651

अन्य धर्म के लोगों ने भी
सबल सृजक सहयोग दिया है ।
आशा के नव दीप जला कर
मेरा मार्ग प्रशस्त किया है ।। 652

उन सबके प्रति मैं विनय सहित
आभारी हूँ अन्तरमन से ।
करती हूँ मैं उन्हें प्रणाम
अति आदर सहित विमल मन से ।। 653

सबसे अधिक ऋणी हूँ उनकी
जिसने इतना मुझे रुलाया ।
आँसू से ही द्रवित हुये प्रभु
प्रेम विवश हो मुझे बुलाया ।। 654

"अरी नलिन तुम क्यों रोती हो
रहती हो मन मलिन उदास।"
श्री राम के इसी प्रश्न ने
अन्तर में भर दिया उजास ।। 655

आँसू तो अब अक्षर हो गये
और व्यथा मन भावन हो गयी।
राम नाम का संग मिला तो
आत्म कथा अति पावन हो गयी ।। 656

(2)

राम कृपा से मिला अन्ततः
मात पिता का सुख सामीप्य।
विरह स्नेह से हम लोगों के
हृदय हुये थे अति दैदीप्य ।। 657

कैसे वर्णन करूँ शब्द में
मात पिता से मिलकर रोना।
और जान कर मेरी पीड़ा
उन लोगों का व्याकुल होना ।। 658

आँसू आँसू केवल आँसू
लिपट चिपट कर हम सब रोये।
आँसू से ही हम लोगों ने
जीवन के निर्मम क्षण धोये ।। 659

फिर से इस जीवन धारा में
हुयीं तरंगित लहरें सुख की ।
हँस कर आपस में करते थे
बातें हम सब बीते दुःख की ।। 660

पुनः हुई सामान्य रुप से
यह जीवन धारा गतिमान ।
पुनः सत्य को मिली प्रतिष्ठा
हार गया कलुषित अभियान ।। 661

कठपुतली सम्पूर्ण जगत है
सूत्रधार हैं सीता राम ।
जाने कैसी लीला लिख दें
लीलाधर कब किसके नाम ।। 662

इसीलिये बस एक सहारा
श्री राम सिया का लिये चली ।
जो भी लीला मिली जगत में
वह भक्तिभाव से किये चली ।। 663

(3)

उन्नीस सौ अंड़तीस ईसवी
बाइस मई जन्म दिन मेरा ।
दुद्धी रेंज जिला मिर्जापुर
जन्मभूमि वन बीच बसेरा ।। 664

प्रथम गुरु बन गये विजन ही
और प्रकृति ही प्रथम सहेली ।
विविध भाँति रुपायित होकर
प्रकृति सदा मेरे संग खेली ।। 665

" श्रीरामचरितमानस " ही था
मेरी शिक्षा का प्रथम ग्रन्थ ।
इससे मानस ही लक्ष्य बना
और यही बन गया सुपन्थ ।। 666

यही प्रबल अभिलाषा मेरी
श्री सिया राम जी कृपा करें ।
अन्त समय तक मेरे प्राण
श्री जानकी वल्लभ जपा करें ।। 667

(4)

पूज्य पिता ' श्री सरयू प्रसाद '
' लीलावती ' सुमाता नाम ।
मात पिता के पुण्य फलों से
मुझको मिले राम अभिराम ।। 668

' सरोज श्रीवास्तव ' नाम दिया
मुझे प्रेम वश मात पिता ने ।
और 'नलिन' कह कर टेरा था
मुझे दया वश जगत पिता ने ।। 669

सरयू पुत्री होने से ही
बसी अयोध्या मेरे मन में ।
सिया राम दिखते रहते थे
सरयू सिक्ता के कण कण में ।। 670

लीलाधर की कथा सुनातीं
'लीलावती' मुझे बचपन में ।
राम भक्ति हो गई सुदृढ़ थी
अनजाने ही मेरे मन में ।। 671

पति 'रमेश चन्द्र' की छाया में
लिखती हूँ निर्भय राम कथा ।
अपनी करुणा अपने अनुभव
अपनी ही पीड़ा और व्यथा ।। 672

पंचानन की अमित कृपा से
ओली भरी पाँच सन्तान ।
त्रिगुण सृष्टि के सुन्दर अंकुर
नारी जीवन का सम्मान ।। 673

राम कथा है जीवन मेरा
आश्रय हैं श्री सीताराम ।
यह मेरी गंगा यमुना हैं
और यही है चारो धाम ।। 674

नहीं लिखी कोई भी बात
केवल किसी द्वेष के कारण ।
बल्कि लिखी इसलिये कि जिससे
हो जाये विद्वेष निवारण ।। 675

जिसने मुझको बहुत रुलाया
मानूँ उसका अति आभार ।
इस पावन कृति का उद्गम है
उसका ही निर्मम व्यवहार ।। 676

यदि कोई दुष्चक्र न होता
तो मैं इतना कैसे रोती ?
होकर द्रवित राम क्यों आते
देने यह करुणामय मोती ?? 677

जब तक ठेस नहीं लगती है
तब तक अन्तस नहीं जागता ।
तब तक तो मन काम क्रोध के
पीछे ही नित रहे भागता ।। 678

काम क्रोध के कारण मन को
नहीं सुहाता है आध्यात्म ।
और बिना आध्यात्म भाव के
मिलता नहीं तत्व परमात्म ।। 679

अतः रुलाने वालों की भी
करती हूँ मैं मन में पूजा ।
मेरा परम हितैषी जग में
उनके जैसा और न दूजा ।। 680

जब जब बीते दिन की सुधियाँ
करती हैं अन्तर में क्रन्दन ।
तब तब उनके युगल चरण को
करती हूँ मैं मन में वन्दन ।। 681

धन्य धन्य वे सभी लोग, जो -
हरि इच्छा के हेतु बन गये ।
आत्म और परमात्म मिलन का
भव - सागर में सेतु बन गये ।। 682

यदि निश्चय ही राम भक्ति से
प्राणी परम मोक्ष पाते हैं ।
भव बन्धन को काट राम के
परम धाम को भी जाते हैं ।। 683

तो मेरी यह विनय सत्य ही
सुनिये हे सीतापति राम ।
मुझसे प्रथम वही अधिकारी
पाने को उत्तम परम धाम ।। 684

सिया राम की अमित कृपा से
काव्य गुरु अति श्रेष्ठ मिल गये ।
गुरु के सरस स्नेह से सिंचित
कृति में भाव यथेष्ठ खिल गये ।। 685

सरस्वती सुत ' श्री सेवकेन्द्र -
त्रिपाठी जी व्रजभाषाचार्य ' ।
कवियों में कवि श्रेष्ठ उन्हींने
किया काव्य संशोधन कार्य ।। 686

जब आचार्य देव के सम्मुख
मैंने अपनी विनय सुनाई ।
'करुणानिधि श्री राम' काव्य के
संशोधन की बात बताई ।। 687

मेरी विनती को गुरु जी ने
तब ऐसे ही स्वीकार किया ।
जैसे सीता के पुत्रों को
ऋषि वाल्मीकि ने प्यार किया ।। 688

जब गुरु जी कृति संशोधन को
मेरी कुटिया में आते थे ।
वातावरण तपोवन जैसा
इस कुटिया में उपजाते थे ।। 689

मात्रा अक्षर और शब्द को
गुरु जी सुमन सरिस चुन लेते ।
पंक्ति पंक्ति में भाव अर्थ को
मोती माला सा बुन देते ।। 690

इस रचना के संशोधन में
गुरु जी तन्मय हो जाते थे ।
राम रुप रस कहते सुनते
स्वयं राम मय हो जाते थे ।। 691

काव्य गुरु की अमित कृपा से
यह राम कथा परिपूर्ण हुई ।
इस राम कथा के साथ साथ
मम आत्म कथा सम्पूर्ण हुई ।। 692

(7)

यह माटी की देह राम जी
समय सलिल में बह जायेगी ।
किन्तु व्यथा के सम्भाषण की
शुभ कथा शेष रह जायेगी ।। 693

जिन अश्रु कणों से राम मिले
वे अश्रु नहीं अमृत घट हैं ।
जिन नयनों से ये अश्रु बहे
वे नयन नहीं गंगा तट हैं ।। 694

हे राम! 'नलिन' अब जीवन भर
इस अमृत रस का पान करे ।
इन नयनों के गंगातट पर
श्री सीतापति का ध्यान करे ।। 695

"करुणानिधि श्रीराम" 'नलिन' के
जीवन की यह करुणा सलिला ।
प्रभु करुणाकर आप लीजिये
यह बिन्दु सिन्धु के साथ मिला ।। 696

तव अंग अंग की उपमा में
मम नाम 'सरोज' प्रयुक्त अहे ।
वर ऐसा मुझे दीजिये प्रभु
जो उपमा के उपयुक्त रहे ।। 697

प्रभु शेष एक अभिलाष यही
वरदान आपसे यह पाऊँ ।
निशिवासर राम सिया जपके
तद्रुप नाथ मैं हो जाऊँ ।। 698

प्रभु ने उठा लेखनी सुन्दर
'अस्तु शब्द' लिख दिया प्रेम से ।
मनोकामना पूरी होंगी
पाठ करे जो नित्य नेम से ।। 699

सप्तशती सम्पूर्ण हुई यह
विहँसे सियपति आनन्दकन्द ।
निज कर उठा **'नलिन'** को प्रभु ने
दिया अमिय रस परमानन्द ।। 700

विनय पत्री

हे राम ! शरण में ले लो !
श्री राम ! शरण में ले लो !
अरि करनी करि रावण तरि गयो,
तर्‌यो विभीषण किये मिताई ।
बाण लगे से बाली तरि गयो,
सुग्रीव तर्‌यो सेवकाई ।।
भक्तिभाव से शबरी तरि गयी,
तरी ताड़का करि अधमाई ।।
पद रज पाय अहल्या तरि गयी,
तरि गयी गणिका सुवा पढ़ाई ।।
जो जेहि भाव भजै प्रभु तुमको,
तेहीं भाव भवहि तरि जाई ।।
परी विपति में 'नलिन' पुकारे,
वेगि सुनहु अब हे रघुराई ।।
भव सागर में नाव डूबती,
कृपा सिन्धु करि कृपा सम्भालो ।।
हे राम ! शरण में ले लो ।
श्री राम ! शरण में ले लो !!

(इति शुभम्)

सरोज श्रीवास्तव 'नलिन'
~~एफ 263, रेलवे कालोनी पश्चिम~~
~~भीमराव अम्बेडकर मार्ग~~, झाँसी
~~उत्तर प्रदेश - पिन - 284 003~~

****